नागरिक सिद्धान्त

(Principles of Civics)

लेखक

गोरखनाथ चौबे, एम० ए०

तथा

प्रोफेसर जी० डी० डेविड

महाराजा संस्कृत कालेज, जयपुर

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

प्रयाग

नागरिक सिद्धान्त

(Principles of Civics)

लेखक

गोरखनाथ चौबे, एम्० ए०

तथा

जी० डी० डेविड,

प्रोफेसर महाराजा संस्कृत कालिज, जयपुर

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक

इलाहाबाद

१९५०

इलाहाबाद प्रेस, त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद

भूमिका

'नागरिक सिद्धान्त' का उद्देश्य विद्यार्थियों को नागरिक शास्त्र की उन बातों का ज्ञान कराना है जिनके बिना वे सामाजिक जीवन के तत्त्व को भली-भाँति नही समझ सकते। प्रत्येक लड़के से यह आशा की जाती है कि वह अपने समाज की रहन-सहन को पहचाने और अपने आप को उसके अन्दर इस प्रकार सचालित करे कि लोग उसे बुरा न कहे। जिस देश मे जो निवास करता है उसके प्रति उसके नाना प्रकार के कर्तव्य होते हैं। कुटुम्ब, ग्राम, देश—इनकी भलाई के लिये हमे अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिये। लेकिन यह कार्य कोई सरल नहीं है। इसके लिये बहुत ही सुव्यवस्थित ट्रेनिंग की आवश्यकता है। नागरिक शास्त्र के अन्दर विद्यार्थियों को इसी बात की ट्रेनिंग दी जाती है कि व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन कैसे करना चाहिये अथवा किसके प्रति हमारे क्या कर्तव्य हैं। यदि विद्यार्थी अन्य शास्त्रों के पडित हो जायँ और उन्हे नागरिक शास्त्र की जानकारी न हो तो उनके जीवन से समाज को अधिक लाभ नहीं पहुँच सकता। सरकारी विभागों मे आज जो घूसखोरी तथा अन्य कमजोरियाँ दिखाई पड़ रही हैं उसका मूल कारण यही है कि लोगों को नागरिकता का ज्ञान नही है।

आशा है विद्यार्थीगण इस से पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे। नागरिक

नमूने के प्रश्न

१—नागरिक शास्त्र का अध्ययन विद्यार्थियों के लिये क्यों आवश्यक है ?

२—नागरिक शास्त्र का क्या उद्देश्य है ? इतिहास, भूगोल तथा राजनीति से इसका क्या सम्बन्ध है ?

३—अधिकार और कर्तव्य का क्या सम्बन्ध है ? नागरिक के प्रमुख अधिकार कौन कौन से हैं ?

४—समुदाय से क्या तात्पर्य है ? किन्हीं तीन समुदायों का वर्णन करो।

५—'कुटुम्ब' शब्द से क्या आशय है ? इसके सगठन और अनुशासन पर प्रकाश डालो।

६—शासन विधान (Constitution) किसे कहते हैं ? इसका वर्गीकरण करो।

७—सरकार किसे कहते हैं ? यह कितने प्रकार की होती है और किसे तुम सबसे अच्छी समझते हो।

७—राष्ट्रीयता की परिभाषा करो और इसकी अच्छाइयों पर प्रकाश डालो।

९—क्या भारत एक राष्ट्र है ? राष्ट्रीयता के लिये किन-किन बातों की आवश्यकता है ?

१०—अपराधी को दंड क्यों दिया जाता है ? इससे उसे क्या लाभ होता है ?

११—समाज मे 'लोकहित' क्यों आवश्यक है ? हमारे देश में लोकहित की भावना कहाँ तक पाई जाती है ?

१२— आदर्श समाज किसे कहते हैं ? महात्मा गाँधी किस प्रकार का समाज बनाना चाहते थे ?

१३—'स्वतन्त्रता' से क्या तात्पर्य है ? नागरिक को समाज मे वह किस सीमा तक दी जा सकती है ?

१४—भारत मे नागरिकता को कहाँ तक वृद्धि हुई है ? इसमें क्या क्या बाधायें हैं ?

१५—'धर्म निरपेक्ष राज्य' का क्या तात्पर्य है ? भारत सरकार इस दिशा में कहाँ तक विश्वास करती है ?

नागरिक सिद्धान्त

(Principles of Civics)

अध्याय १

नागरिक शास्त्र, तात्पर्य, क्षेत्र तथा अन्य विषयों से संबन्ध

परिभाषा (Meaning & Scope of Civics)—

मनुष्य सामाजिक जीव है, वह अकेले नहीं रह सकता। जन्म से मरण तक उसने दूसरों के सम्पर्क में रहना तथा सहयोग से चलना सीखा है। मनुष्य और समाज का वैसा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसा कि धुआँ और आग का। मनुष्य और समाज के पारस्परिक उद्योग से जो उन्नति होती है उसी को हम सभ्यता कहते है। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव उतना ही अधिक या कम होगा, जितना बड़ा और छोटा समाज है। प्रसिद्ध विद्वान राहुल साकृत्यायन का मत है कि हमारी भाषा, विज्ञान, कला, फैशन, रीति-रिवाज, राजनैतिक व्यवस्था आदि सामाजिक जीवन की ही मुख्य देन है। समाज वास्तविक इकाइयों—व्यक्तियों से ही बना है। ये व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में रहते हुए निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं, तथा अपने समाज और सभ्यता का भी विकास करते है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। लेकिन यह उसकी कोई विशेषता नहीं है। क्योंकि सभी प्राणी सामाजिक होते है। चींटी से ले कर हाथी तक, छोटे बड़े सभी जीव अपनी जाति के गिरोह के साथ रहते है। चिड़ियाँ, बन्दर, जंगली जानवर, मक्खियाँ तथा कीड़े-मकोड़े सब अपने समाज में रहते है। इनमें भी रहन-

सहन आदि का कोई नियम हो सकता है, जिनका हमे ज्ञान नहीं है। ये जीव मनुष्य को एक प्रकार का साधारण जीव समझते होंगे। लेकिन इनमे मधुमक्खी, बन्दर तथा कुछ पक्षियों की रहन-सहन को देखकर हमें यह मानना पड़ता है कि इनके अन्दर एक अच्छा सगठन है, और इन्हे कुछ नियमों का पालन अनिवार्य रूप से करना पडता है। जब कोई बन्दर पेड से गिर जाता है तो कुछ वर्षों के लिये वह बन्दरों के समूह से निकाल दिया जाता है। जब किसी बन्दर को हम छेडते अथवा चोट पहुँचाते है तो सभी बन्दर हम पर टूट पडते है। यह सगठन नही तो ओर क्या है? मधुमक्खियो मे कोई स्वामी, कोई दासी, और कोई पहरेदार होता है। वैज्ञानिको का कहना है कि ये सभी अपना कार्य नियमित रूप से करते है। जगली जानवर जहाँ कही निकलते है अपने झुड का साथ नही छोड़ते। इन दो चार उद्धरणो से तात्पर्य यह है कि सामाजिक होना मनुष्य की कोई विशेषता नही, बल्कि प्राणीमात्र का एक स्वाभाविक गुण है।

समाज मे रहने के नाते मनुष्य को एक दूसरे के साथ सपर्क रखना पड़ता है। यदि वह ऐसा न करे तो उसकी आवश्यकताओ की पूर्ति नही हो सकती। समाज मे रहते हुए कोई भी मनुष्य स्वावलम्बी नही है। वह कितनी ही ऐसी चीजो का प्रयोग करता है जो उसे दूसरे से प्राप्त होती है। प्राचीन काल मे जब आवश्यकतायें कम थी, मनुष्य एक दूसरे पर कम निर्भर करता था। लेकिन वर्तमान युग मे इन आवश्यकताओं की सख्या इतनी बढ गई है कि हर एक मनुष्य संसार के कितने ही देश की वस्तुएँ काम मे लाने लगा है। अर्थात् मनुष्य का सम्पर्क एक दूसरे के साथ और भी बढता जा रहा है। रेल, तार,

डाक, सड़कें, हवाई जहाज, आदि वैज्ञानिक साधनों से यह सम्पर्क और भी बढ रहा है। ऐसी दशा मे यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति इस बात की जानकारी रखे कि उसे एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की ट्रेनिंग मिलनी चाहिये कि सामाजिक व्यवस्था के अनुकूल कैसे जीवन व्यतीत किया जाय। नागरिक शास्त्र का अध्ययन इसी प्रकार की ट्रेनिंग देता है। इसके अध्ययन से व्यावहारिकता तथा कुशल सामाजिक जीवन, दोनो की शिक्षा प्राप्त होती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से नागरिक शास्त्र का विषय अधिक प्राचीन नहीं है। किन्तु भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों को इस विषय का पूर्ण बोध था, क्योंकि कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" तथा महात्मा मनु की "मनुस्मृति" मे इस विषय पर काफी प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों से हमे प्राचीन भारत के सामूहिक जीवन, शासन-व्यवस्था एव जीवन-प्रणाली का पूरा-पूरा हाल मालूम होता है। परन्तु आधुनिक काल मे हम जिस विशेषरूप मे इस विषय का अध्ययन करते है, उसका प्रादुर्भाव ग्रीस तथा रोम मे ही खास तौर से हुआ है।

उत्पत्ति और परिभाषा (Origin and Definition:—"सिविक्स" (Civics) शब्द लैटिन भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। "सिविक्स" (Civics) अर्थात् रहने वाला (Citizen)। 'सिविटस'' (Civitas) अर्थात् नगर या नगर-राज्य। 'सिविक' (Civic) शब्द का अर्थ है, नगर अथवा नागरिकों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बाते।

इसी प्रकार ग्रीस में राजनीति (Politics) का जो 'Polis' शब्द से निकला है, अर्थ था 'वह विद्या जिसका

सम्बन्ध 'Polis' या नगर के जीवन से हो। इस प्रकार रोम और ग्रीस मे 'Civics' (नागरिक शास्त्र) तथा 'Politics' (राजनीति) को करीब-करीब एक ही विपय समझते थे, क्योंकि उनका विशेष ध्यान उन लोगों के शासन की ओर था जो अधिकतर नगर के निवासी होते थे।

नागरिक शास्त्र की परिभापा विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। कुछ का कहना है कि जिस विद्या से सामाजिक रहन-सहन का ज्ञान हो उसे नागरिक शास्त्र कहते है। लेकिन ऐसी परिभापा का कोई विशेप मूल्य नहीं। कारण यह है कि कोई भी ऐसा शास्त्र नही जिससे सामाजिक रहन-सहन का थोडा ज्ञान न हो। इतिहास, भूगोल, राजनीति आदि ग्रथ भी सामाजिक रहन-सहन का विस्तृत वर्णन करते है। एक विद्वान का कहना है "नागरिक शास्त्र वह विज्ञान है जो आदर्श सामाजिक जीवन का सुख मार्ग खोजने मे हमारी सहायता करता है।* यह परिभापा भी कोई सतोप-जनक नही है, क्योंकि मनुष्य जीवन की सब समस्याएँ केवल अधिकार और कर्तव्य ही समझने से हल नही हो जाती। यदि सच पूछा जाय तो यही कहना पडेगा कि 'नागरिकशास्त्र' (Civics) इतना व्यापक विपय है कि इस की कोई सतोप-जनक परिभापा नहीं हो सकती। यही कारण है कि विद्वानों ने इसकी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से परिभाषा की है और कोई भी इस कार्य मे सफल नहीं हो सका है। डा० व्हाइट (White) का मत है कि नागरिक शास्त्र वह विपय है जिसमे नागरिकता के सब पहलुओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसका आदर्श तो 'वसुधैव कुटुम्बकम' ही है। इस विपय का बोध केवल परिभापा से ही

*'Civics is the science that seeks to discover the conditions of the best possible social life

नहीं हो सकता । इसी से इस विषय की पूरी व्याख्या की जाती है।

नागरिक शास्त्र की व्याख्या—(Description of Civics)—प्रत्येक शास्त्र अपनी एक सीमा रखता है। और उसके अन्दर वह एक निश्चित विषय पर अपना विचार स्पष्ट करता है। नागरिक शास्त्र के अन्दर हमे मनुष्य को व्यवहार-कुशल बनाने के सारे सिद्धान्त दिखाई पडते है। वैसे तो साधारण ज्ञान सभी को होता है और उसी की सहायता से लोग अपना कार्य करते है। लेकिन कभी-कभी व्यवहार-कुशल लोगों को देखकर यह मानना पडता है कि विद्या उतनी आवश्यक नहीं है, जितनी व्यावहारिकता। व्यावहारिक जीवन मे असफल विद्वान भी समाज मे छोटा समझा जाता है। परन्तु अशिक्षित अथवा थोडे पढ़े-लिखे व्यवहार-कुशल लोगो की समाज म बड़ी मर्यादा होती है। इस व्यावहारिकता को समझने के लिये जिस शास्त्र का निर्माण किया गया है वह यही नागरिक शास्त्र है। कुछ लोग कह सकते है कि इतना व्यवहार-कुशल तो मनुष्य अपने आप हो जाता है और इसके अध्ययन की क्या आवश्यकता है? यदि हम इनकी बातों को सही मान ले तब तो हमें कहना पडेगा कि इन्जिनियरिंग, औषधि शास्त्र, कृषि तथा भवन-निर्माण आदि शास्त्र की कोई आवश्यकता नही है। साधारण औषधियाँ थोडी बहुत सभी लोगों को मालूम रहती है लेकिन, वैद्य अथवा डाक्टर वही कहलाता है जिसने क्रमबद्ध इस शास्त्र का अध्ययन किया है। इसी तरह कृषि शास्त्र तथा इन्जिनियरिंग आदि विद्याओं के ज्ञाता होते है। व्यावहारिक ज्ञान के लिये नागरिक शास्त्र की उपेक्षा हम इसी प्रकार नही कर सकते जैसे उपरोक्त अन्य शास्त्रों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

फौज मे हजारों सिपाही होते है। जिन्हे जैसी ट्रेनिग मिलती है वे उतने ही योग्य होते हैं। इसी योग्यता पर उनका पद निश्चित किया जाता है। जिस समाज मे हम जीवन व्यतीत करते है वह किसी युद्ध क्षेत्र से कम नही है। यह सभी मानते है कि जीवन एक संघर्ष है। थोडी सी भूल होते ही मनुष्य अनेक कठिनाइयों मे पड जाता है। जिन्हे समाज मे सम्मान का ध्यान होता है उन्हे बहुत ही सतर्क रहकर जीवन व्यतीत करना पडता है। अपनी भूल तो दूर रही, कभी-कभी दूसरों की गलतियों के कारण हमे लज्जित और अपमानित होना पडता है। हमारा मान-अपमान न केवल अपने ही शरीर के साथ बल्कि अपने कुटुम्ब, मित्र, तथा सम्बन्धियों के जीवन के साथ मिला होता है। यदि हम इसे और भी गहराई के साथ सोचे तो जाति और देश का गौरव भी हमे अपना ही गौरव दिखाई पडेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज मे मनुष्य एक दूसरे के साथ बँधा हुआ है। यह बन्धन उसकी उन्नति का एक साधन है। इस पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान नागरिक शास्त्र का एक मुख्य विषय है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या बिना किसी ट्रेनिंग प्राप्त किये ही मनुष्य इस पारस्परिक सम्बन्ध मे कुशल रह सकता है? जब युद्ध क्षेत्र मे बिना किसी ट्रेनिंग के कोई सिपाही अच्छी तरह काम नही कर सकता तो इस जीवन संग्राम मे भी एक बडी ट्रेनिंग की आवश्यकता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। उन्हे पार करने के लिये नियम-उपनियम बनाये गये हैं। व्यवहार-कुशल व्यक्ति इन कठिनाइयों को सरलतापूर्वक पार कर जाता है।

किसी विषय की कोरी जानकारी से कोई विशेष लाभ नही है। इससे थोड़ा बहुत मानसिक संतोष हो सकता है लेकिन

समाज का कोई कल्याण नही हो सकता। प्रत्येक शास्त्र अपना दो पहलू रखता है—एक भावात्मक, दूसरा क्रियात्मक। पहले मे उसके सिद्धान्तो तथा गूढ रहस्यों की व्याख्या रहती है तथा दूसरे में उन्हे कार्यान्वित करने की क्रियाओं का वर्णन रहता है। दोनों की जानकारी के बिना शास्त्र मे पूर्णता नही आती। उदाहरण के लिये गणित शास्त्र को ले ले। यदि लघुतम, महत्तम, ब्याज, लाभ-हानि, क्षेत्रफल आदि प्रश्नों को हम अच्छी तरह समझ लें तो जीवन मे इसकी उतनी उपयोगिता नही है जितनी वास्तविक रूप मे होनी चाहिये। एक वैज्ञानिक गणित के प्रश्नों को हल करने के लिये गणित शास्त्र का अध्ययन नही करता। उसका उद्देश्य वैज्ञानिक अनुसन्धानो मे गणित शास्त्र के सिद्धान्तों का उपयोग करना होता है। नागरिक शास्त्र के भी दो पहलू हैं। एक मे सिद्धान्तों तथा नियमों का वर्णन होता है जिनकी जानकारी के बिना सामाजिक ज्ञान अधूरा रह जायगा। लेकिन इसका क्रियात्मक पहलू पहले से कहीं आवश्यक है। बातों को जानकर उन्हे ठुकरा देने से कोई लाभ नही। यदि हम सत्य बोलने के लाभ-हानि पर रोज विचार करे और इस पर अनेक पुस्तके भी पढ जायें, परन्तु छोटी-छोटी बातों के लिये झूठ बोलते रहे तो हमारी सत्य की जानकारी से क्या लाभ? यह कौन नही जानता कि माता-पिता तथा गुरु के प्रति आदर-भाव रखना चाहिये। यह किसे नही मालूम है कि अपने बड़ों का सम्मान करना चाहिये। भावात्मक रूप मे यह बात सभी जानते हैं कि जहाँ जैसा अवसर हो वहाँ उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये। परन्तु कार्य रूप मे समाज मे कुछ और ही दिखाई पडता है। इसका कारण यही है कि क्रियात्मक पहलू पर जोर नहीं दिया जाता। नागरिक शास्त्र में क्रियात्मक पहलू का स्थान भावात्मक से अधिक है। इसीलिये इस शास्त्र की व्याख्या करते

वाले अध्यापक तथा आचार्य अपने व्यावहारिक जीवन से इसका जितना अधिक ज्ञान करा सकते हैं उतना बड़े बड़े व्याख्यान तथा गम्भीर उद्धरणों से नहीं करा सकते। समाज में आवश्यकता भी इसी बात का है कि व्यावहारिक जीवन का क्रियात्मक पहलू बढाया जाय, और इसकी शिक्षा बचपन से ही लोगों को दी जाय।

नागरिक शास्त्र का विस्तार (Scope)—अध्ययन की सुविधा के लिये विभिन्न शास्त्रों का निर्माण किया गया है। इन सबकी तह में एक ही बात पाई जाती है, और वह है ज्ञान की प्राप्ति। प्रत्येक शास्त्र ज्ञान का प्रादुर्भाव करता है। ज्ञान एक है। प्रश्न यह है कि एक ही ज्ञान के लिये इतने शास्त्रों की क्या आवश्यकता है? केवल दो चार शास्त्रों में इसकी व्याख्या क्यों न कर दी गयी। ज्ञान रूपी समुद्र इतना अथाह और गम्भीर है कि किसी भी शास्त्र में वह बाँधा नहीं जा सकता। जितने शास्त्र अब तक बनाये गये हैं वे भी उसकी गहराई को पूरी तरह नापने में असमर्थ हैं। जो ज्ञान इतना गम्भीर है उसकी व्याख्या इने गिने शास्त्र कैसे कर सकते हैं। यही कारण है कि विद्वानों ने शास्त्र की शाखाओं तथा उपशाखाओं का निर्माण किया और आज सैकड़ों शास्त्र पाये जाते हैं। प्रत्येक शास्त्र अपनी सीमा के अन्दर ज्ञान का वर्णन करता है। तात्पर्य यह है कि विभिन्न शास्त्र एक ही ज्ञान के समझने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। इसीलिये एक शास्त्र दूसरे से कहीं न कहीं मिला हुआ है। शास्त्र दो प्रकार के हैं—भौतिक और सामाजिक। भौतिक शास्त्रों में शरीर विज्ञान, रसायन-शास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र आदि माने जाते हैं। इनकी व्याख्या से नागरिक शास्त्र का कोई सम्बन्ध नहीं है। सामाजिक शास्त्रों में इतिहास, भूगोल, राजनीति, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाज-

शास्त्र, नागरिक शास्त्र आदि की गणना होती है । इन सब में समाज के भिन्न-भिन्न विषयो पर विचार किया जाता है। स्थान स्थान पर ये विषय एक दूसरे के इतने निकट आ जाते है कि एक शास्त्र के अन्दर लगभग सभी शास्त्रों का उद्धरण देना पड़ता है। कहीं-कहीं पर तो एक ही विषय समान रूप से कई शास्त्रों में वर्णन किया जाता है।

ऊपर कहा गया है कि नागरिक शास्त्र के अन्दर व्यक्ति के कर्तव्यों का वर्णन किया जाता है। जब हम इन कर्तव्यों पर विचार करते है तो इनका कोई अन्त दिखाई नही पड़ता। जीवन के सभी क्षेत्रों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्तव्य होते है। सरकार के प्रति हमे कुछ कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। कुटुम्बीजनों के प्रति हमारे कर्तव्य दूसरे प्रकार के होते है। देश और जाति के प्रति भी कुछ कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। इन सामाजिक कर्तव्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कर्तव्य हैं जिनका पालन करना कम आवश्यक नही है। अपने विचारों को ठीक रखने तथा लोक-परलोक की सिद्धि के लिये हमे धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। इसी प्रकार सैकडो कर्तव्य हमारे सामने उपस्थित रहते है और हम अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार उनका पालन करते है। यदि नागरिक शास्त्र इन कर्तव्यों का ही शास्त्र है तो उपरोक्त व्याख्या के अनुसार इसका सम्बन्ध राजनीति (Politics) और धर्म (Religion) से भी है। इतिहास के अन्दर जहाँ राजाओं की जीवनियों तथा युद्धों का वर्णन किया जाता है वहाँ देश की सभ्यता, उसके उत्थान और पतन का भी वर्णन पाया जाता है। सभ्यता सामाजिक जीवन का वह पहलू है जिसके लिये प्रत्येक युग मे अपने-अपने तरीके पर प्रयत्न किया जाता है। जब कभी मनुष्य को उसके

कर्तव्यों का ज्ञान कराना होता है तो यह आवश्यक है कि इतिहास के पिछले उद्धरणों मे उन तमाम सभ्यताओं का वर्णन किया जाय, जिनमे रहकर उसके पूर्वजों ने अपने कर्तव्यों का पालन किया है। जब तक किसी बात का पूर्वापर सम्बन्ध नहीं जोडा जाता तब तक उसको पुष्टि नहीं होती। इसीलिये नागरिक शास्त्र का सम्बन्ध इतिहास (History) से भी है। ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर प्रत्येक देशवासी अपने पूर्वजों का गीत गाता है। जिसको प्राचीन सभ्यता जितनी ही ऊँची है, उसे सामाजिक जीवन मे उतना ही अधिक गौरव प्राप्त है।

प्रत्येक देश की जलवायु अलग अलग होती है। इसके अनुकूल देशवासी अपना रहन-सहन बनाते है। सामाजिक रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान तथा रस्म-रिवाज मे जो भिन्नता पाई जाती है, वह इसी जलवायु का परिणाम है। इसके अन्दर कोई दैवी पक्षपात अथवा प्राकृतिक विशेषता का कारण नही है। मनुष्यों के रूप-रंग मे जो भिन्नता पाई जाती है उसका भी कारण भौगोलिक स्थिति ही है। अज्ञानतावश यदि किसी देश के रहने वाले अपने रूप और रंग के कारण अन्य देश वासियों से अपने आपको बडा समझें तो यह उनकी सरासर भूल है। नागरिक शास्त्र के अन्दर देशवासियों के आचार-विचार, रीति-नीति तथा संगठन आदि का वर्णन किया जाता है। ऐसी दशा मे इसके अन्दर उस देश की भौगोलिक स्थिति (Geographical Position) का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जिसे समाज मे रहते हुए थोडी बहुत आर्थिक दशा की व्यवस्था न करनी पडती हो। सामाजिक सुख और शांति का बहुत बड़ा दारोमदार व्यक्ति की आर्थिक दशा पर निर्भर है। कोई भी सामाजिक संगठन तब तक पूर्ण नहीं है जब तक उसकी

आर्थिक व्यवस्था सुव्यवस्थित नही बनाई जाती। प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत, कौटुम्बिक तथा राष्ट्रीय उन्नति के लिये इस आर्थिक व्यवस्था (Economic Condition) की थोडी बहुत जानकारी अवश्य होनी चाहिये। नागरिक शास्त्र के अन्दर उन आर्थिक सिद्धान्तो का समावेश किया गया है जिनकी जान-कारी के विना कोई भी सामाजिक व्यक्ति व्यवहार-कुशल नही बन सकता। इसी प्रकार देश की उपज, प्राकृतिक दशा तथा खनिज पदार्थों की थोडी बहुत जानकारी के विना उस देश के व्यावहारिक जीवन का ज्ञान नहीं कराया जा सकता।

नागरिक शास्त्र का मूल सिद्धान्त एक होते हुये भी इसके क्रियात्मक रूप में एक बहुत वडी भिन्नता पाई जाती है। इसका कारण यह है कि 'जैसा देश वैसा भेष।' जिस देश की जैसी स्थिति है उसीके अनुकूल वहाँ के निवासी व्यवहार कर सकते हैं। भारतीय नागरिकता अन्य देशों की नागरिकता से न केवल भिन्न बल्कि कुछ अशों मे ऊँची और कुछ अंशों मे निम्न श्रेणी की है। भिन्नता का कारण इस देश की जलवायु, उपज, तथा प्राकृतिक बनावट है। जहाँ तक इसकी ऊचाई का प्रश्न है, यह सभी देश स्वीकार करते हैं कि भारतवर्ष के रहने वाले अधिक धार्मिक और आचार-विचार के पक्के होते है। इस देश का प्राचीन इतिहास इस बात का प्रमाण है कि यहाँ के विद्वानों मे जो प्रतिभा थी वह अन्य देशवासियों मे नहीं पाई जाती। इस देश का दर्शन शास्त्र आज भी सब देशों मे ऊँचा स्थान रखता है। लेकिन कुछ अशों मे इस देश की नागरिकता निम्न भी है। यूरोप निवासियों मे सामाजिक रहन-सहन का अपना एक ढग है। उनमे कुछ बातें ऐसी पायी जाती हैं जिनका हमारे अन्दर सर्वथा अभाव है। न तो हमे उसकी शिक्षा ही दी जाती है, और

न हम उनके महत्त्व को जानकर अपनाते है। समय की पाबन्दी, कदम मिलाकर चलना, कार्य मे तल्लीनता तथा दूसरों की सेवाओं के लिये धन्यवाद का व्यवहार करना—ये बातें उनकी नागरिकता मे एक प्रमुख स्थान रखती है। हम अपने जीवन में उन्हें कम महत्त्व देते है। तात्पर्य यह है कि जहाँ भारतीय नागरिकता का उद्देश्य आचार-विचार के रूप में इतना महान है वहाँ अपने दैनिक कार्यों मे यह चन्द छोटी बातों की शिक्षा नहीं देती। ये छोटी बाते जीवन मे बहुत बड़ा स्थान रखती है, और इन्हीं से हम, लोगों के आचरण की नाप करते है।

नागरिक शास्त्र के उद्देश्य (Aims and Objects)—किसी कार्य के करने मे उद्देश्य का जानना आवश्यक है। इसके अभाव मे सम्भव है हम गलत रास्ते पर चले जायँ। लोग तीर्थ स्थानों मे स्नान के उद्देश्य से अथवा किसी देवी-देवता के दर्शन के लिये जाने की तैयारी करते है। यदि कोई ऐसे स्थान पर पहुँच कर शहर की नाना प्रकार की वस्तुओं को मोल लेने तथा रेल और मोटर की यात्रा करने म ही भूल जाय तो वह घर पहुँच कर समाज मे हँसी का पात्र समझा जायगा। इतिहास के अध्ययन मे सबसे बड़ा उद्देश्य उस देश की सभ्यता की जानकारी है। इसके अतिरिक्त या इसके अभाव मे राजाओं के नाम, उनकी जन्म तिथि, अनेक युद्धों का वर्णन उसकी जानकारी के साधन मात्र है। इन्हीं को उद्देश्य मानकर जो इतिहास का अध्ययन करता है उसकी जानकारी अधूरी ही होती है। यह साधारण सी बात है कि यात्रा के पहले हमे यह निश्चित कर लेना चाहिये कि अन्त मे हमे कहाँ जाना है। मार्ग की जानकारी न होने से हमे उतनी हानि न होगी जितनी उद्देश्य के अभाव मे। स्टेशन पर हम यह तो किसी से पूछ सकते है कि अमुक स्थान को कौन सी गाड़ी जाती है। लेकिन

हम यह नहीं पूछ सकते कि हम कहाँ जायँ। इसका निश्चय हमें स्वय करना होगा। नागरिक शास्त्र के अध्ययन मे हमें इस उद्देश्य का ध्यान रखना चाहिये। हमारे कौन-कौन से कर्तव्य है, किसका कितना महत्व है तथा इनके अभाव में हमे कितनी हानियों का शिकार बनना होगा, इन सब की जानकारी आवश्यक है। सबसे बडा उद्देश्य तो यह है कि हम अपने समाज मे व्यवहार-कुशल कैसे बनें। इसके लिये अपने देश के सभी रस्म-रिवाजों तथा परिपाटियों की जानकारी रखनी चाहिये। सभी सामाजिक सगठनों, धार्मिक सस्थाओं, सुधार आन्दोलनों का ज्ञान किसी न किसी मात्रा मे अवश्य रखना चाहिये। पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन तथा सभा-समितियों मे सहयोग करने से हमे इनकी जानकारी आसानी से हो सकती है।

अपनी सामाजिक व्यवस्था की जानकारी के बिना कोई व्यवहार कुशल नहीं हो सकता। नागरिक शास्त्र इस बात की व्याख्या करता है कि सामाजिक नियमों और व्यावहारिक जीवन मे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन्ही के द्वारा मनुष्य समाज से एक दूसरे से बँधा हुआ है। जिन्हे सामाजिक नियमों की परवाह नहीं है और जो स्वतन्त्रता का गलत अर्थ लगाकर इनकी अवहेलना करते है उन्हे यह शास्त्र चेतावनी देता है कि स्वतन्त्रता का वास्तविक अनुभव नियम पालन मे ही है। प्रत्येक देशवासी अपने जीवन को नियमानुकूल बना ले और सामाजिक तथा राजनीतिक दोनों प्रकार के नियमों को बिना किसी हिचक के स्वीकार करले, यह भी इस शास्त्र का एक उद्देश्य है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि पुरानी रूढियों तथा बुरे कानूनों को लोग चुपचाप मान ले और उनके प्रति अपने विचारों को प्रकट न करें। ऐसा करने से देश में कूप मण्डूकता फैलेगी।

जहाँ यह शास्त्र नियम पालन तथा सुव्यवस्थित जीवन की शिक्षा देता है वहाँ व्यक्ति में इस बात की स्फूर्ति भी पैदा करता है कि वह प्राचीन रूढ़ियों को तोड़कर नये नियमों का निर्माण करे और प्रत्येक अवसर पर अपनी बुद्धि का आश्रय ले। अर्थात् समाज को समझने तथा इसके अनुकूल अपने जीवन को ढालने में जिन-जिन बातों की आवश्यकता है उन्हे सामने रखते हुए यह शास्त्र व्यक्ति को इस बात के लिये उत्तेजित करता है कि वह अपने जीवन के उत्थान के साथ समाज सुधार द्वारा एक नवीन समाज का निर्माण करे, जो उसकी आने वाली सन्तान के अनुकूल हो। इस प्रकार नागरिक शास्त्र भूतकाल की घटनाओं से लेकर भविष्य काल के समाज निर्माण तक का वर्णन करता है। यदि इस शास्त्र की अच्छी जानकारी द्वारा कोई अपने को व्यवहार-कुशल बना ले तो उसका उद्देश्य समाप्त नहीं हो जाता। अपने को योग्य बना लेना कर्तव्य-पालन की एक तैयारी मात्र है। वर्तमान जीवन के अनुकूल एक सुव्यवस्थित समाज बनाने की क्षमता रखने वाले व्यक्तियों का यह भी कर्तव्य है कि वे धन, वैभव को पाकर सुख और शान्ति की नींद मे अपने आध्यात्मिक जीवन को खो न बैठे। इससे कभी न कभी उनका शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का पतन होगा।

नागरिक शास्त्र की अध्ययन-विधि (Methods of study)—किसी कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिये चन्द सामग्रियों की आवश्यकता पडती है। सगीत सीखने वाले को हार्मोनियम, सितार, बेला आदि कोई न कोई बाजा अपनाना पडता है। इसी प्रकार पेंटिंग, ड्राइंग तथा अन्य पच्चीकारी आदि कलाओं को सीखने के लिये कितनी ही सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है। नागरिक शास्त्र के अध्ययन मे इस प्रकार की ऊपरी सामग्री की कोई आवश्यकता

नहीं है। इसके लिये दो बातों की आवश्यकता है। इसका अध्ययन करते समय पाठक गण क्रियात्मक उद्धरणों द्वारा इसके वास्तविक उद्देश्य को समझते रहे। दूसरी आवश्यकता सामाजिक कार्यों मे लगन की है। सामाजिक जीवन से उदासीन रह कर जो व्यक्ति इस शास्त्र का अध्ययन करेगा उसका श्रम निरर्थक सिद्ध होगा। विद्यार्थियो को चाहिये कि वे अध्ययन के साथ-साथ समस्त सामाजिक कार्यों मे बड़ी लगन के साथ सहयोग करे। जहाँ कही सभा-सोसाइटियाँ हों अथवा मेले और सामूहिक उत्सव हो, उनमे सक्रिय सहयोग अवश्य दे। जिन्हें बड़े-बडे नेता और देश-सुधारक बनने की अभिलाषा है उन्हें आरम्भ से ही विभिन्न सगठनों तथा सामूहिक अवसरों पर सेवक का कार्य बडी लगन से करना चाहिये। जिन शहरो अथवा गॉवो में बच्चे निवास करते है वहाँ कितने ही ऐसे अवसर आते है जब कि लोग एक दूसरे से मिलते-जुलते अथवा खुशी मनाते है। होली, दीवाली, बसन्त पचमी, दशहरा, मुहर्रम, बड़े दिन आदि त्योहार इसी लिये बनाये गये है कि लोग रोज के कामों से छुट्टी लेकर एक दूसरे से मिले और पूर्ण विश्राम करे। विद्यार्थियों को चाहिये कि ऐसे अवसरों पर इस प्रकार के सगठन बनाये जिससे इनके करने का महत्त्व बढ जाय और किसी प्रकार की गन्दी बाते इनमे प्रवेश न करे। यदि नागरिक शास्त्र के विद्यार्थी इस प्रकार का सक्रिय सहयोग देते हुए अपने विषय का अध्ययन करे तो उन्हे जीवन मे अधिक सफलता प्राप्त होगी।

वर्तमान समय मे रचनात्मक कार्यों की चर्चा अधिक होने लगी है। देश की आर्थिक दशा को बिगड़ते हुए देखकर लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है कि जब तक घरेलू कारो-बार जीवित न किये जायेगे तब तक आर्थिक दशा मे कोई सुधार

नही हो सकता । बुनियादी शिक्षा मे उद्योग-धन्धों को महत्त्व देने का यह भी एक कारण है। नागरिक शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन सामाजिक उत्थान का द्योतक है। परन्तु इसकी सार्थकता तभी होगी जब कि इसके विद्यार्थी रचनात्मक कार्यों मे पूरी।दिलचस्पी लेंगे। सबसे अधिक व्यवहार-कुशल वह है जो समय को पहचान कर कार्यों मे लीन होता है। यदि विद्यार्थी इस पहलू को समझकर रचनात्मक कार्यों की वृद्धि मे सहयोग देते रहें तो सामाजिक जीवन मे उनका तथा नागरिक शास्त्र का मूल्य कही अधिक बढ जायगा। बडी-बडी किताबे पढने तथा उनकी टीका-टिप्पणी पर वाद-विवाद करने से केवल भावात्मक पहलू की पुष्टि होगी जिससे शास्त्र का ज्ञान अधूरा रह जायगा। रचनात्मक कार्यों से आर्थिक उन्नति के साथ मानसिक विकास भी होना है। लोगो को जहाँ एक ओर वस्तु निर्माण तथा इनकी उत्पत्ति की लगन रहती है वहाँ उन्हे इनकी उपयोगिता तथा खपत का भी ध्यान रखना पडता है। इसके लिये उन्हे अनेक प्रकार के सगठन बनाने पडते हैं। कभी-कभी अपने ढग के साहित्य का भी प्रचार करना पडता है जिससे लोगों मे एक विशेष प्रकार की रुचि उत्पन्न हो। यह साधन उनकी मानसिक उन्नति के लिये कम नही है। इसलिये रचनात्मक कार्यों मे सहयोग देने का तात्पर्य यही नहीं है कि लोगों मे कारोबार की रुचि पैदा हो जाय बल्कि इससे उनके अन्दर एक सरस जीवन का भी सचार होगा।

नागरिक शास्त्र के अध्ययन मे जहाँ लगन और स्फूर्ति की आवश्यकता है वहाँ इस बात का भी ध्यान रखना है कि सामाजिक जीवन मे सरसता की वृद्धि हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक कार्यों को इसलिये करे कि उनमे उसकी वास्तविक रुचि है।

भार समझकर कार्य करने वालों की सख्या बढ़ने से सामाजिक जीवन की रोचकता जाती रहती है। यदि समाज में मजदूरों की सख्या बढ़ जाय और इने-गिने लोग हजारों मजदूरों को रखकर कारोबार चलाने लगें तो यह व्यवस्था बहुत ही निम्न श्रेणी की समझी जायगी। सबेरे से शाम तक हम अपना कार्य इसलिये करते हैं कि इनसे हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, समाज का विकास होता है तथा औरों को भी इनसे लाभ पहुँचता है। इनके अतिरिक्त इनसे हमारी शारीरिक और मानसिक उन्नति होती है। कार्य की गुरुता का यह भाव नागरिक शास्त्र के विद्यार्थियों को भलीभाँति कराया जाता है। यदि इस गौरव को वे अपने तक ही सीमित रख लें तो उनके अध्ययन का तरीका गलत सिद्ध होगा। उन्हे चाहिये कि किसान, मजदूर, व्यापारी, साधु-सन्तो तथा विद्यार्थी आदि वर्गों मे अधिक से अधिक इस भावना का प्रचार करें। किसी भी प्रकार स सामाजिक जीवन मे नीरसता नही आनी चाहिये। समाज मे उदासीन जीवन उसकी अवनति की अतिम श्रेणी है। जिस जाति के अन्दर जीवन नहीं है उसकी शिक्षा-दीक्षा से क्या लाभ है ? समाज-शास्त्रवेत्ता जहाँ सामाजिक नियमों की उपयोगिता पर विचार करते है वहाँ उनका यह भी कर्तव्य है कि लोगों मे उस भावना की वृद्धि करें जिससे वे अपने कार्यों मे अधिक रुचि रक्खे और उन्हे भार न समझे। सगठनों तथा सार्वजनिक कामों की वृद्धि से वह कार्य अच्छी तरह किया जा सकता है।

जिन्हें नागरिक शास्त्र से पूर्ण लाभ उठाने की जिज्ञासा है वे अपने जीवन को अपने ही तक सीमित न रखें। पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा व्याख्यान मालाओं से उन्हे जो ज्ञान प्राप्त हो उसे वे सामाजिक कार्यों की प्रयोग-शाला मे व्यवहृत करें।

सामाजिक जीवन को अधिक से अधिक सरस बनाएँ, समस्त सामूहिक कार्यों में पूरी दिलचस्पी लें, नवीन संगठनों का निर्माण करें तथा लोगों मे कार्य की गुरुता का सचार करे। वर्तमान भारतीय समाज मे इन कार्यों को करने के लिये इतना बड़ा क्षेत्र है कि कोई भी इसमे अपना सहयोग दे सकता है। ग्राम-सगठन उद्योग-धन्धों की वृद्धि, ग्रामोन्नति, हरिजन-सेवा, स्त्री-शिक्षा, किसान-सगठन, राष्ट्रीय निर्माण आदि कार्य इतने बढ़े हैं कि इनमे लाखों आदमी वर्षों तक कार्य कर सकते है। यदि नागरिक शास्त्र के विद्यार्थी इस अध्ययन विधि का आश्रय लें तो शास्त्र और देश दोनों की उन्नति होगी।

अध्याय २

अधिकार और कर्त्तव्य

Rights and Duties

अधिकार और कर्तव्य (Rights and Duties)—प्रत्येक मनुष्य जो समाज मे रहता है, नाना प्रकार के उद्योग-धंधों मे अपना जीवन व्यतीत करता है। इन कार्यों के करने मे उसे कितने ही व्यक्तियों से सहायता लेनी पडती है। अपना सब काम अकेले ही करने की सामर्थ्य किसी मे नही होती। कोई कम, कोई अधिक मात्रा मे औरों पर निर्भर करता है। इसी से सामाजिक जीवन की उत्पत्ति होती है। कुछ कार्य ऐसे है जिन्हे हमे औरों से पूछ कर करना पड़ता है। लेकिन अधिकतर कार्य हम अपनी बुद्धि से करते रहते हैं। समाज की ओर से हमें उन कार्यों को करने का अधिकार प्राप्त है। सड़क पर चलने के

लिये हमे किसी की आज्ञा नही लेनी पड़ती। सरकार की ओर से आम जनता को यह अधिकार प्राप्त है कि जो चाहे सड़क पर चले। इसी प्रकार कितनी ही सार्वजनिक वस्तुओं का उपयोग हम अपनी इच्छानुसार करते है और हमें यह महसूस नही होता कि ये चीजें किसी और की है। इसका कारण यही है कि एक नागरिक के नाते हम उन पर अपना अधिकार समझते है। लेकिन जिन जगहों पर अपना अधिकार समझकर हम कोई कार्य करते हैं वहाँ कुछ कर्तव्यों का भी हमें ध्यान रखना पड़ता है। यदि किसी मन्दिर मे पूजा-पाठ करने का हमे अधिकार प्राप्त है तो हमारा कर्तव्य है कि हम वहाँ किसी प्रकार की न तो गंदगी करें और न मूर्ति को हानि पहुँचायें। सार्वजनिक पुस्तकालयों में जाने का अधिकार सभी को है परन्तु यह उनका कर्तव्य है कि वे पुस्तकों को इधर-उधर न करे और शांतिपूर्वक अध्ययन कर बाहर चले जायँ। जहाँ अधिकार होता है वहाँ कर्तव्य का भी पालन करना पडता है।

सरकारी विभागों मे उच्च पदाधिकारियो को बडे-बड़े अधिकार प्राप्त होते है। कलेक्टर को अपने जिले मे किसी को भी गिरफ्तार करने का अधिकार है। वह जहाँ चाहे गोली चलवा सकता है और किसी के ऊपर मुकदमे चलाकर जेल भेज सकता है। लेकिन इन अधिकारों के पीछे उसे बहुत बड़ी जिम्मेदारी भी दी गयी है। यदि वह इनका पालन नही करता तो अपने इन अधिकारों से उसे हाथ धोना पडेगा। अपने जिले मे शांति रखना, प्रजा के साथ न्याय करना तथा जनता की रक्षा के लिये दुष्टों को दड देना इत्यादि कर्तव्य उसे करने पड़ते हैं। एक न्यायाधीश को यह अधिकार है कि वह किसी को फाँसी तक दे दे। परन्तु साथ ही उसका यह कर्तव्य भी है कि वह अपराधी के साथ

पूरा न्याय करे और कानून के अनुसार उसे दंड दे। पक्षपात करने से वह अपने कर्तव्य का पालन नही कर सकता और अन्त मे वह अपने अधिकारों को भी खो बैठेगा। जो अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता उसके अधिकार भी छीन लिये जाते हैं। अधिकार और कर्तव्य मे एक घनिष्ठ सम्बंध है। दोनों एक ही साथ निवास करते हैं। एक की अनुपस्थिति में दूसरा नही टिकता। कर्तव्यहीन मनुष्य अधिकार रहित कर दिया जाता है। जिसके अन्दर कर्तव्य-पालन का जितना ही अधिक भाव होता है उसी मात्रा मे अधिकार भी प्रदान कर दिये जाते है। इन दोनों की घनिष्ठता को देखते हुये कुछ लोगों का अनुमान है कि एक ही वस्तु के ये दोनों भिन्न-भिन्न नाम है। जब तक अधिकार और कर्तव्य दोनों का सम्यक् ज्ञान नहीं होगा तब तक सत्कर्म को प्रेरणा नहीं हो सकती। जब मनुष्य के अन्दर कर्तव्य-पालन का भाव आता है तो उसे अधिकार को भी आवश्यकता पड़ती है। लेकिन कर्तव्य पथ पर रहते हुए मनुष्य को अधिकार के कारण पथ-भ्रष्ट नही होना पड़ता। समाज की यह विशेषता है कि वह कर्तव्यवान पुरुषों को अधिकारों से विभूषित कर देता है।

नागरिक के अधिकार (Rights of a citizen)— किसी ग्रामीण किसान से पूछा जाय कि उसे कौन-कौन से अधिकार प्राप्त है तो वह आश्चर्य मे पड़ जायगा। कारण यह है कि उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं है कि उसके पास अधिकार नाम की कोई वस्तु है। लेकिन एक पढ़े-लिखे व्यक्ति को यह भली-भाँति ज्ञात है कि प्रत्येक मनुष्य कोई न कोई अधिकार रखता है। जिसकी योग्यता अधिक है उसके अधिकार भी बड़े होते हैं। कुछ लोगों के अधिकारों का प्रभाव काफी लोगों पर

पड़ता है और कुछ का असर एक छोटे मे दायरे मे रह जाता है। कार्य के जितने क्षेत्र हैं अधिकारों की उतनी किस्मे है। अधिकार से मनुष्य के अन्दर एक प्रकार की शक्ति पैदा होती है। अधिकारहीन व्यक्ति शक्ति-हीन समझा जाता है। अधिकारों की कोई गणना नही हो सकती। अध्ययन की सुविधा के लिये विद्वानों ने समस्त अधिकारों को दो वर्गों मे बाँट रखा है—राजनीतिक अधिकार और सामाजिक अधिकार। सामाजिक अधिकार की भी कई श्रेणियाँ है। जैसे समाज मे व्यक्ति के निजी अधिकार, उसके धार्मिक अधिकार तथा जीविकोपार्जन सम्बंधी अधिकार। इनकी सूक्ष्म व्याख्या से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जायगी कि इन अधिकारों का क्या तात्पर्य है और सामाजिक जीवन मे इनका क्या महत्व है। कर्तव्यशील पुरुषों को इन अधिकारों की रक्षा का विशेष ध्यान रखना पडता है। अधिकारों को खोकर बडे से बडे व्यक्ति को समाज मे अपमानित होना पडता है। अधिकार और कर्तव्य से ही उसकी शोभा होती है। किसी व्यक्ति के बढते हुए अधिकारों को देख कर हम यह अनुमान कर सकते है कि वह अधिक योग्य और क्रियाशील है।

सामाजिक अधिकार (Social Rights)—समाज में रहते हुए कोई अधिकारों से सर्वथा वचित नहीं रह सकता। एक दूसरे के सम्पर्क मे आकर कार्य करने की सुविधा के लिये यह आवश्यक है कि लोगों मे सहयोग के कुछ नियम बनाए जायँ। यदि सभी लोग अपने आपको एक दूसरे से बडा समझें और कोई एक दूसरे की बात का मूल्य न समझे तो कितने ही सामाजिक कार्य रुक जायँगे। चूँकि सामाजिक जीवन मे कार्य सचालन की एक उत्तम व्यवस्था मौजूद है, इसलिये अधिकारों का महत्व किसी को मालूम नहीं पडता। कोई यह प्रश्न कर

सकता है कि उसे समाज में कौन-कौन से अधिकार प्राप्त हैं। सबेरे से शाम तक के उसके कार्यों मे अधिकार की कोई बात दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन जब हम उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोण को सामाजिक दृष्टिकोण से मिलाते है तो उसे थोड़ा सा इस बात का ज्ञान होता है कि इसके कार्यों का सम्बन्ध औरों के साथ भी है। और उसके विचारों का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। बिना किसी संकोच के वह सार्वजनिक वस्तुओं का उपयोग करता है। नदी, तालाब, कुएँ, जगल, पर्वत, मन्दिर, मसजिद, पुस्तकालय, सड़क, स्कूल, अस्पताल इत्यादि वस्तुओं से अथवा संस्थाओं से वह निःसंकोच लाभ उठाता है। यदि हम उससे पूछें कि जब ये चीजें उसकी निजी नहीं हैं तो इन्हें इस्तेमाल करने का उसे क्या अधिकार है? वह यही उत्तर देगा कि चूंकि इन्हें सभी लोग इस्तेमाल करते है इसलिये वह भी करता है। अर्थात् इन्हें उपयोग में लाने का समाज की ओर से सबको अधिकार प्राप्त है। जब कोई सार्वजनिक उत्सव, खेल-कूद अथवा मेला होता है तो यह सभी को अधिकार प्राप्त है कि वे इनसे लाभ उठायें। अपने दैनिक कार्यों को करने के लिये हम जिन उद्योग-धन्धों का आश्रय लेते है उनमे कितने ही कार्य ऐसे हैं जिनकी आज्ञा समाज की ओर से हमें दी गयी है। नाई, धोबी, दरजी, कुम्हार, बढ़ई, काछी आदि पेशे वाले अपने कार्यों को अपना सामाजिक अधिकार समझकर करते है। यदि कोई बढ़ई किसी धोबी का कार्य करे तो उसकी चेष्टा अनधिकार समझी जायगी और वह अपनी जाति से बहिष्कृत कर दिया जायगा।

समाज मे जिसे जो अधिकार प्राप्त है उसी सीमा के अन्दर उसे कार्य करने पड़ते है। जब वह इसका उल्लंघन करता है तो

समाज उसे दंड देता है। हमारे देश की विभिन्न जातियों मे आज भी पंचायतों का रिवाज है। अपनी-अपनी बिरादरी में पंचायतें इस बात का ध्यान रखती है कि कोई सामाजिक नियमों की अवहेलना न करे। हमारे घरों मे जब कोई उत्सव अथवा कार्य होता है तो उसमे अनेक प्रकार के लोग सहयोग देते है। कुछ के प्रति हमें समाज की ओर से यह अधिकार प्राप्त है कि हम उनसे सहयोग दिलाये। यदि ऐसी व्यवस्था न हो तो अच्छे-अच्छे लोगो के कार्य रुक जायँ। कुछ कार्यों के लिये समाज ने हमे यह अधिकार प्रदान किया है कि हम उन्हें अपनी इच्छानुसार कर सके। लेकिन उसमे भी सामाजिक नियमों का ध्यान रखना पडता है। एक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जिससे चाहे अपना वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करे। लेकिन उसे यह कार्य अपनी ही बिरादरी मे अपने धार्मिक नियमों के अनुसार करना होगा। इस प्रकार हमारे प्रत्येक कार्य मे सामाजिक अधिकार को झलक पाई जाती है। जब कभी यह अधिकार हम से छिन जाता है उस समय हमे इसका मूल्य मालूम पड़ता है। यदि हमारे ऊपर रेल की यात्रा के लिये रोक लगा दी जाय अथवा पंचायत को ओर से हमारे लिये गॉव के कुओं का पानी बन्द कर दिया जाय तो हम समझ सकते है कि हमे कितनी असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा।

व्यक्तिगत अधिकार (Individual Rights)—सामज मे लोगो को कुछ ऐसे अधिकार प्रदान किये गये है जिनका प्रभाव उसके व्यक्तिगत जीवन पर गहरा पड़ता है। यद्यपि इसका प्रभाव औरों पर भी पडता है लेकिन वास्तविक सम्बन्ध उसी के जीवन से रहता है। इस प्रकार के व्यक्तिगत अधिकार और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे कोई भेद नहीं रह जाता। प्रत्येक

व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपने आपको जितना चाहे स्वस्थ, गुणी और योग्य बनाये। इसमें उसे कोई रुकावट नहीं डाल सकता। उसे यह भी अधिकार है कि वह अपनी सम्पत्ति का उपयोग जैसे चाहे करे। अपने आश्रित व्यक्तियों के साथ अच्छा और बुरा दोनों प्रकार का व्यवहार वह कर सकता है। अपने विचारों को समाज के अनुकूल बनाकर उसे अनेक प्रकार के सामाजिक कार्य करने का अधिकार है। परन्तु उसकी इच्छा ऐसी नहीं है तो वह निरा स्वार्थी होकर अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। खाने-पहनने, आने-जाने तथा सोने-बैठने में वह अपनी इच्छा का अनुसरण कर सकता है। कार्य रूप में अधिकतर व्यक्ति समाज के अनुकूल ही इन चीजों का व्यवहार करते हैं लेकिन उन्हे यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपनी स्वतन्त्र इच्छा का अनुसरण करें। मित्र बनाने, सम्बन्ध स्थापित करने, दान देने तथा सेवा-सुश्रूषा करने के लिये प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह इनमें जैसा और जितना चाहे सहयोग दे। इन कार्यों के लिये कोई किसी को बाध्य नहीं कर सकता।

कहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत अधिकारों में पूर्ण स्वतन्त्र है। परन्तु कार्य रूप में ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो इन कार्यों मे सामाजिक नियमों की अवहेलना करें। ऐसा करने से समाज मे उनकी निन्दा होती है और सार्वजनिक कामों में लोग उनके प्रति उदासीन रहते हैं। इसीलिये बड़ा से बड़ा आदमी छोटे से छोटे लोगों के साथ आदर का भाव रखता है और अपने प्रत्येक कार्य मे सब से सहयोग प्राप्त करता है। वह जानता है कि उसका बड़प्पन सामाजिक सहयोग पर ही कायम है। समाज में जब कोई व्यक्ति धन-वैभव, विद्या अथवा यश में उन्नति करता है तो उसका बहुत कुछ श्रेय उन व्यक्तियों को

होता है जो उसे आगे बढाते है। यदि उनके सहयोग की कड़ी टूट जाय तो वह अपने आपको एक बहुत बडी कठिनाई में महसूस करेगा। इसीलिये व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का उपयोग मनुष्य वहीं तक करता है जहाॅ तक दूसरों को इससे हानि न पहुँचे और सामाजिक नियमों को कोई ठेस न लगे। सड़क पर गन्दे गाने गाते हुए जो लोग सुने जाते है वे अपने व्यक्तिगत अरिधकारों का दुरुपयोग करते है। उनके इस कार्य से समाज मे जो गन्दगी फैलती है उसका दोषारोपण करने के लिये सारा समाज तैयार होगा। ऐसी दशा मे हम अपने व्यक्तिगत अधिकारों के प्रयोग मे भी अपने आपको समाज का ही एक अंग समझें।

धार्मिक अधिकार (Religious Rights)—भारतवर्ष एक धर्म प्रधान देश माना जाता है। प्राचीनकाल से भारतीय समाज मे धर्म की इतनी प्रचुरता है कि प्रत्येक कार्य को धार्मिक रूप दे दिया गया है। इस धर्म के दो पहलू हैं—एक का सम्वन्ध पूजा पाठ तथा धार्मिक क्रियाओं से है और दूसरे का सम्वध उन धार्मिक सिद्धान्तों से है जिन्हे महापुरुषों ने समय-समय पर प्रदान किया है। धर्म के सम्वन्ध मे अधिकारों का प्रश्न उठता है। क्या एक ही व्यक्ति कई धर्मों को स्वीकार कर सकता है ? क्या कोई व्यक्ति अपने धर्म की अवहेलना कर सकता है ? क्या लोगों को धार्मिक नियमों मे परिवर्तन करने का अधिकार है ? इस प्रकार के प्रश्न ऐसे हैं जिन पर विचार करने के लिये एक बहुत बड़े वाद-विवाद की आवश्यकता है वर्त्तमान समय मे धर्म एक गौण वस्तु है। इसका स्थान आज विज्ञान ने ग्रहण किया है। धार्मिक रूढ़ियों से घबडा कर लोग उन्ही बातों को मानने के लिये तैयार हैं जो तर्क पर ठीक उतरती हैं। हर एक को यह अधिकार है कि वह हिन्दू, मुसलमान

अथवा ईसाई धर्म में विश्वास करे और ऊपरी तरीके पर भी अपना सब कार्य उसीके अनुसार करे। एक हिन्दू को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त है कि वह अपने आपको बौद्ध, जैन, कबीर पंथी, वैष्णव, आर्य समाजी, राधास्वामी-सत्सगी, दादूदयालपन्थी सतमतावलम्बी इत्यादि किसी भी मत को स्वीकार कर ले। इसमे उसे कोई रोक टोक नही है। उसे यह भी अधिकार है कि वह अपने आपको आस्तिक अथवा नास्तिक घोषित कर दे।

यद्यपि व्यक्ति को आज धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त है परन्तु प्राचीन काल मे अथवा मध्य युग मे ऐसी स्वतन्त्रता न थी। धार्मिक विचारों से ही लोगों के सम्मान की तौल होती थी। धर्म-परिवर्तन एक बहुत बड़ी समस्या थी। धार्मिक नियमों का उल्लघन करना एक बड़ा अपराध माना जाता था। इसके लिये खूनखराबियाँ तक हो जाती थी। विज्ञान की उन्नति के कारण जब धार्मिक विश्वास कम होने लगा तो लोगों का ध्यान उसके गौरव से जाता रहा। इस उदासीनता का कारण उन धार्मिक पुजारियों का व्यवहार है जिन्होंने धर्म के नाम पर सदियो तक अपना स्वार्थ-साधन किया है और आज भी कर रहे है। यदि धर्म की ओर से लोग उदासीन है और धार्मिक विश्वासों मे उनकी आस्था नही है तो इसका दोष धर्म को नहीं बल्कि धर्म के ठेकेदारों को है। प्रत्येक धर्म के अन्दर किसी न किसी जाति की एक सभ्यता होती है। धर्म को खोकर वह जाति अपना सस्कृति को खो बैठती है। यदि धर्म मे कुछ रूढ़ियाँ प्राचीन हो गयी है अथवा उसमे और किसी प्रकार की खराबी पैदा हो गयी है तो हम उसकी ओर से उदासीन हो सकते हैं परन्तु सम्पूर्ण धार्मिक विचारों और सिद्धान्तों को एक स्वर से ठुकरा कर हम अपने प्राचीन गौरव को खो बैठेंगे। धर्म के

अन्दर जो दार्शनिक विचार होते हैं उनका महत्त्व कम नहीं होता। उन्हीं की सहायता से करोड़ों व्यक्तियों को सुख और शान्ति मिलती है। ऐसी दशा में जहाँ हमें धर्म-परिवर्तन का पूर्ण अधिकार है वहाँ हमें यह भी समझना चाहिये कि हम अपने धार्मिक विचारों तथा दर्शन शास्त्रों से अपने आपको एक आदर्श नागरिक बना सकते हैं। व्यक्ति की उन्नति की जितनी अधिक सामग्री धर्म के अन्दर पाई जाती है उतनी किसी अन्य क्षेत्र में नहीं पाई जाती।

राजनीतिक अधिकार (Political Rights)—राजनीतिक अधिकार सामाजिक अधिकारों से कम महत्वपूर्ण नहीं है। जो अधिकार सरकार की ओर से व्यक्ति को प्रदान किये जाते हैं वे राजनीतिक अधिकार कहलाते हैं। अपना कार्य सञ्चालित करने के लिये सरकार को जनता में कुछ अधिकारों का वितरण करना पड़ता है। ये अधिकार कई प्रकार के होते हैं। कुछ तो जनसाधारण को बिना किसी भेदभाव के दे दिये जाते हैं और कुछ सरकारी कर्मचारियों को उनकी योग्यतानुसार दिये जाते हैं। समाज में इन अधिकारों के साथ एक बहुत बड़ा गौरव माना जाता है। जिसे जितना ही अधिक सरकारी अधिकार प्राप्त है वह उतना ही अधिक सम्मान का पात्र समझा जाता है। सरकार जब इन अधिकारों को प्रदान करती है तो उनके साथ अनेक प्रकार की शर्तें रखती है। जब तक कोई उन शर्तों को पूरा करता रहता है तब तक वे अधिकार उसके पास रखे जाते हैं अन्यथा उससे छीन कर किसी और को दे दिये जाते हैं। राजनीतिक अधिकार ३ प्रकार के हैं:—

(१) निर्वाचन सम्बधी अधिकार जिसे मताधिकार भी कहते हैं।

(२) सरकारी नौकरी सम्बंधी अधिकार।
(३) रक्षा सम्बधी अधिकार जिसे नागरिकता भी कहते है।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड तथा व्यवस्थापिका सभाओं के लिये सदस्यों का निर्वाचन होता है। कितने ही व्यक्ति इनके सदस्य बनने के लिये खड़े होते है और लोग इन्हें वोट देते हैं। लेकिन वोट देने का अधिकार सबको नहीं दिया जाता। सरकार इस अधिकार को उन्हीं व्यक्तियों को देती है जो उस देश के नागरिक है, अर्थात जिनकी आयु एक निश्चित वर्ष से अधिक है और जो इस देश में स्थायी रूप से निवास करते है अथवा जिन्हे देश की राष्ट्रीयता मे विश्वास है। सरकारी नौकरियाँ भी उन्ही को प्रदान की जाती हैं जो देश के नागरिक है और जिनकी शिक्षा उन पदों के अनुकूल होती है। इसके लिये सरकार परीक्षाओं आदि का प्रतिबन्ध लगाकर कई प्रकार से लोगों की परख करती है। जब कोई व्यक्ति विदेश मे जाता है तो वहाँ उसका पद उसके देश से निर्धारित किया जाता है। यदि वहाँ उसके ऊपर कोई संकट आता है तो उसके देश की सरकार ही उसका निवारण कर सकती है। परन्तु यहाँ भी सरकार उसकी रक्षा का भार तभी लेती है जब वह अपने देश का नागरिक हो। यदि उसे नागरिकता की प्राप्ति नही हुई है तो वह उस रक्षा से वचित समझा जायगा।

नागरिकता (Citizenship)—राजनीतिक अधिकारों के वर्णन मे नागरिकता शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर किया गया है। इसलिये इस शब्द के वास्तविक अर्थ को जाने बिना नागरिक शास्त्र की व्याख्या करना एक प्रकार की भूल होगी।

जब हम नागरिक शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह किसी नगर या शहर में निवास करता है। इसके शाब्दिक अर्थ से शास्त्रीय अर्थ नहीं निकलता। नागरिक शहर अथवा गाँव कहीं भी रह सकता है। सरकार की ओर से जिन्हे चन्द अधिकार प्राप्त है वे नागरिक कहलाते है। इन अधिकारों को प्राप्त कर किसी भी स्थान पर रहते हुए वे नागरिक कहलाने के अधिकारी है। इन अधिकारों को देकर सरकार नागरिक को एक पद प्रदान करती है जिसका नाम नागरिकता है। अर्थात् नागरिकता केवल नागरिक को प्राप्त होती है। प्रत्येक देश में नागरिक और अनागरिक दोनों प्रकार के लोग रहते है। अनागरिक को केवल सामाजिक अधिकार प्राप्त होते है। परन्तु नागरिक को सामाजिक और राजनीतिक दोनों प्रकार के अधिकार दिये जाते है। नागरिकता राष्ट्रीयता की एक कसौटी है। जिसे अपने देश क गौरव का अभिमान नहीं है और जो अपने जीवन से अपनी राष्ट्रीय उन्नति नहीं करता वह वास्तविक नागरिक कहलाने का अधिकारी नही है। नागरिकता से इस बात का आभास होता है कि व्यक्ति को राष्ट्रीयता का वह पद प्राप्त है जिससे उसके अन्दर देशभक्ति और देशोन्नति का समावेश है।

नागरिक के कर्तव्य (Duties of a Citizen)— अधिकारो के विवेचन मे नागरिकता के केवल एक पहलू पर विचार किया गया है। लेकिन इसीसे काम नही चल सकता। केवल अधिकारो को पाकर यदि कोई नागरिक अपनी उन्नति करना चाहे तो यह कदापि सभव नहीं है। सफलता का दूसरा आवश्यक अग कर्तव्य-पालन है। जो अपने कर्तव्यों का भलीभाँति पालन करता है वह अधिकारों का ज्ञान न रखते हुए भी उन्नतिशील रहता है। जिस प्रकार अधिकारों की सख्या परिमित

नहीं है उसी प्रकार कर्तव्य भी अनंत हैं। हर एक मनुष्य अपनी योग्यतानुसार अपने कर्तव्यों का पालन करता है। कर्तव्य को घटाने और बढ़ाने की क्षमता मनुष्य के अन्दर स्वयं होती है। यदि हम अपने कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन करते रहें तो इनकी संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है। जो लोग अपने कर्तव्यों का पालन भार समझकर करते हैं उन्हें उन्नति का अवसर कम मिलता है। प्रसन्नता-पूर्वक कर्तव्य-पालन से समाज और अपनी दोनों की उन्नति होती है। कभी-कभी कठिनाइयों के कारण हमे अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं रह जाता और हम कर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं, परन्तु ऐसे अवसरों पर जब हम अपने से बड़ों का आश्रय लेते हैं तो हमारी कठिनाइयाँ बहुत कुछ दूर हो जाती हैं। समाज मे जो सम्मान अथवा यश हमें प्राप्त होता है उसका बहुत कुछ श्रेय कर्त्तव्य पालन को है। जो रात-दिन किसी अच्छे कार्य में लगे रहते हैं, और जिन्हें अपने आपको समाज मे प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिलता, वे भी अपने कर्त्तव्यों के कारण अपने उचित पद को प्राप्त कर लेते हैं।

कर्त्तव्यों के सूक्ष्म वर्णन के लिये यह आवश्यक है कि हम उन्हें कई श्रेणियों में विभाजित करें। जैसे जैसे हम इनका पालन करते है उसी क्रम से इन पर विचार किया जाय। समाज में सब लोग एक ही प्रकार का कार्य नहीं करते। कुछ लोग अपने ही लाभ-हानि की चिन्ता में व्यस्त रहते है। उन्हें दूसरों की परवाह नहीं होती। कुछ लोग जितना ध्यान अपने कार्यों का रखते है उतना ही दूसरों का भी। कुछ थोड़े से व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं जिन्हें दूसरों के कार्यों की चिन्ता अपने कार्यों से बढ़ कर होती है। वे समाज-सेवा के ऐसे कार्यों में अपने को लगाये रखते हैं जिनसे दूसरों को नाना प्रकार के लाभ पहुँचते

हैं। कर्तव्यों की श्रेणियों में तीन क्रम है। सबसे पहला कर्तव्य अपने प्रति है। इसके पश्चात् दूसरा कर्तव्य समाज के प्रति है और तीसरा कर्तव्य उस सरकार के प्रति है जो हमारे शासन की व्यवस्था करती है। इन्हीं के अतर्गत हमारे सम्पूर्ण कर्तव्यों का ज्ञान हो जाता है। नागरिक शास्त्र के पठन-पाठन का मुख्य उद्देश्य यही है कि लोग अपने कर्तव्यों का ज्ञान रखे और उनका यथा शक्ति पालन करे।

अपने प्रति कर्तव्य (Duties to one- self)—जब हम कर्तव्य शास्त्र के अन्दर प्रवेश करते है तो सबसे पहले हमें अपनी ओर नजर डालनी पडती है। जिस प्रकार राष्ट्र की उन्नति के लिये छोटे बच्चों की शिक्षा तथा उनके रहन-सहन का ध्यान रखना पडता है उसी प्रकार दूसरों की सेवा तथा बडे-बडे कार्यों पर विचार करने के पहले हमे अपने आपको किसी श्रेणी तक उठाना पडता है। एक अयोग्य व्यक्ति इच्छा रखते हुए भी कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता। जब कभी हमे किसी बड़े कार्य के करने की अभिलाषा हो तो आरभ से ही हमें अपने आपको इस बात के लिये तौलना चाहिये कि क्या उसकी क्षमता हमारे अन्दर मौजूद है? जो अपने प्रति कर्तव्य का पालन नही करता वह समाज मे भार समझा जाता है। जो अपने शरीर को स्वस्थ नही रखता उसे नाना प्रकार की बीमारियों का शिकार बनना पडता है। स्वयं उसकी देख-रेख के लिये कुटुम्बी-जनों को कष्ट उठाना पडता है। सरकारी आय का एक हिस्सा इसी प्रकार के बीमारों के लिये अस्पतालों पर खर्च किया जाता है। दुष्ट लोगों को दण्ड देने के लिए पुलिस और जेल की व्यवस्था करनी पड़ती है। इतने पर भी समाज

में अनेक प्रकार के कुव्यवहार होते रहते हैं। इसका कारण यह है कि इन व्यक्तियों को अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं है।

सबसे पहला कर्तव्य जो मनुष्य को अपने प्रति करना चाहिये वह शरीर की देख-रेख है। जब तक हमारा शरीर हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ नही है तब तक हम अपने किसी कार्य को पूरा नही कर सकते। जब हमारे शरीर मे बल होगा तभी हमे हाथ-पैर हिलाने की इच्छा होगी और इसी से कार्य का संचालन होगा। शरीर के पश्चात् हमारा ध्यान शिक्षा की ओर जाना चाहिये। अच्छी शिक्षा प्राप्त कर हमारा मन अच्छे-अच्छे कार्यों को सोच सकता है। जितने भी बड़े-बडे समाज सुधारक अथवा महापुरुष हुए है उन्हे अपने विचारों को ठीक करने के लिये वर्षों तक तप करने पड़े है। जिसके अन्दर शिक्षा का अभाव है वह नैतिक बल प्राप्त नही कर सकता। इसलिये सबसे पहले हमे उन कर्तव्यों की ओर बढ़ना चाहिये जिनसे हमारा व्यक्तिगत जीवन शुद्ध और परिष्कृत होता है। इनके अतिरिक्त हमे उन छोटी-छोटी बातों का भी ध्यान रखना चाहिये जिनसे समाज मे अनेक प्रकार की गन्दी बातें फैलती है। अपने को साफ सुथरा रखना, किसी को कटु वचन न कहना, मिथ्या भाषण न करना, बिना पूछे किसी की कोई चीज न लेना, किसी के प्रति तिरस्कार का भाव न रखना, अपनी बातों मे गन्दे शब्दों का प्रयोग न करना इत्यादि बातें ऐसी है जिन्हे व्यक्ति को अपना कर्तव्य समझना चाहिए। अधिकतर लोग बड़ी-बड़ी बातों का तो ध्यान रखते है, परन्तु इन बातों की परवाह नहीं करते। नतीजा यह होता है कि समाज मे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और कलह का प्रचार होता है। यदि हम अपने इन कर्तव्यों का पालन करते रहें तो समाज की सैकड़ों बुराइयाँ लुप्त हो सकती है। जिनके अन्दर ये कमजोरियाँ शेष रह जाती है वे

समाज के प्रति अपने कर्तव्यों मे ऐसी गलतियाँ कर बैठते हैं जो अशाति का कारण बन जाती है।

समाज के प्रति कर्तव्य(Duties towards Society)—अपने को ही स्वस्थ और योग्य बनाने से हमे शाति नहीं मिल सकती। समाज एक इकाई है और इसमे एक का जीवन दूसरों से जुडा हुआ है। जब तक हमारे आस-पास के लोग सुखी नहीं है तब तक हम अपने सुख का भी अनुभव नही कर सकते। मान लीजिये किसी गाँव मे एक हजार आदमी रहते है। इनमे एक कुटुब के लोग धन-धान्य से पूर्ण और शिक्षित है। बाकी लोगों मे शिक्षा का अभाव है और वे दाने-दाने को तरसते है। ऐसे वायु-मडल मे रहकर उस शिक्षित कुटुब का भी जीवन सुखी नहीं रह सकता। या तो वह इस बेमेल पडोस से घबडा कर स्वयं कही चला जायगा अथवा दूसरे ही उसे इतना परेशान करेगे कि विवश होकर उसे उन्हे छोडना होगा। इसी लिये सामूहिक उन्नति और विकास मे समाज का कल्याण समझा जाता है। हमे अपने सब कार्यों मे सामाजिक उन्नति का भाव सदैव रखना चाहिये। जिस समाज मे हम रहते है उसकी उन्नति के लिये हमे कोई कसर नहीं रखनी चाहिये। दूसरों के सुख दुःख मे साथ देना, दीन-दुखियों की सहायता करना, अपनी आय का एक हिस्सा दूसरों के निमित्त लगाना इत्यादि कार्य सामाजिक कर्तव्यों के अन्तर्गत गिने जाते है। समाज मे कुछ सार्वजनिक सस्थाएँ तथा वस्तुएँ होती है। उनकी रक्षा तथा उन्नति करना प्रत्येक का सामाजिक कर्तव्य है। यदि हम अपने ही सुख-दुख की चिन्ता करे और दूसरों का कोई ध्यान न रखें तो इससे स्वार्थ की भावना फैलेगी और लोगों को महान् कष्ट का सामना करना पड़ेगा।

हमे अपने व्यक्तिगत विचारो को वही प्रधानता देना चाहिये जहाँ सामाजिक विचारों से इनका कोई मतभेद न हो। समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिये अनेक प्रकार के नियम बनाये जाते है। क्षणिक आवेश म आकर जब हम इन्हे तोडते है तो एक बहुत बडे अपराध के भागी बन जाते है। यदि नियमों से हमारे व्यक्तिगत लाभ मे कुछ बाधा पड़ती है तो इससे घबडाने की कोई आवश्यकता नही हैं। हमं उसके सामाजिक परिणाम पर भी विचार करना चाहिए। किसी सभा-सोसाइटी मे जाकर जब हम किसी उचित स्थान पर चुपचाप बैठते है तो कुछ समय पश्चात् हमारी तबीयत ऊब जाती है। हर प्रकार से हम बन्धन मालूम पडता है। यह बन्धन हमारे लिये थोडा अस्वाभाविक भले ही होपरन्तु सार्वजनिक काय के लिये इसकी आवश्यकता है। इन्हीं नियमों के कारण हजारों आदमी एक जगह पर बैठकर किसी अच्छी बात पर विचार करते है और एक व्यक्ति दूसरों पर अपना विचार प्रगट करता है। इसी से लोककल्याण के लिये तरह तरह के कार्य किये जाते है। विद्यार्थियों की शिक्षा का एक पहलू यह भी होना चाहिये कि क्रमशः उनका जीवन सामाजिक होता जाय और वे अपने किसी व्यक्तिगत कार्य को समाज-हित से सर्वथा भिन्न न समझे।

सरकार के प्रति कर्तव्य (Duties towards State)—समाज मे कोई भी व्यक्ति सरकारी सगठन से अलग नही है। सरकार सब की रक्षा का समान-रूप से ध्यान रखती है और अपनी शक्ति द्वारा सामाजिक शांति की व्यवस्था करती है। यदि सरकारी सगठन न हो तो देश मे अशांति फैलेगी और लोगों का जीवन अव्यवस्थित हो जायगा। चूँकि सरकार एक दृढ शक्ति है इसलिये उसके भय से बुरे भी अपराध करने मे हिचक करते है।

कानूनों का निर्माण कर सरकार लोगों को इस बात के लिये विवश करती है कि कोई एक दूसरे को शारीरिक तथा आर्थिक हानि न पहुँचाये। इससे कमजोर से कमजोर व्यक्ति अपने हक पर कायम रहता है। अपराधियों को विना किसी सकोच के दंड दिया जाता है। लोग बुरे कामों के करने मे भय खाते है। यद्यपि सरकार अपनी शक्ति से लोगो से कानूनो का पालन करवाती है और उसकी स्थिति किसी की विशेष कृपा पर निर्भर नहीं है तो भी नागरिकता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि लोग सरकार के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करे। वह जिन कानूनों को बनाती है उनमे प्रजा का ही हित रहता है। नागरिकों को विना किसी दबाव के उनका पालन करना चाहिये। समाज के हित के लिये कितने ही सरकारी कार्य किये जाते है। रेल, तार, डाक, सड़के, स्कूल, फौज, कचहरियाँ, सरकारी कर्मचारी—इन सब के व्यय के लिये सरकार को लाखों रुपये खर्च करने पडते है। इन्हीं की पूर्ति के लिये नागरिकों पर टैक्स लगाना पड़ता है। लोगों को चाहिये कि टैक्सों को जरूरी समझ कर देते रहे। सरकारी विभागों मे छोटे से बड़े तक अनेक कर्मचारी कार्य करते है। उनका सारा कार्य जनता की भलाई के लिये होता है। लोगों का कर्तव्य है कि वे इन कर्मचारियों का आदर करें और इनके कार्यों मे यथाशक्ति सहयोग दे।

हमारे देश मे सरकारा कर्मचारियों और आम जनता मे सहयोग का अभाव पाया जाता है। कर्मचारी अपने आपको मालिक समझते है और दूसरे लोग उन्हे छोटे मालूम पडते हैं। कभी कभी वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते है। जिसके फलस्वरूप या तो लोगों से घूस लेते हैं अथवा उन पर अत्याचार करते है। दोनों के सबध की यह भावना सरासर

गलत है। सरकारी कर्मचारी प्रजा के सेवक है और उसी की कमाई पर लबी लबी तनख्वाहे पाते है। उन्हें प्रजा की भलाई के लिये अपने कर्तव्यों का पूरा पूरा पालन करना चाहिये। तभी नागरिकों में उनके प्रति श्रद्धा का भाव पैदा होगा। कभी कभी देश की सरकार सकट मे पड़ जाती है। भूचाल, महामारी अथवा अकाल के समय उसे विशेष परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर नागरिकों को सरकारी योजना का पूर्ण समर्थन करना चाहिये। जब कभी देश पर बाहरी आक्रमण होता है तो सरकार को फौजी शक्ति बढ़ाने के लिये धन और जन दोनों की आवश्यकता पडती है। धन का विशेप दुरुपयोग होता है और हजारों निर्दोप प्राणियों की जाने जाती है। दोनों अवस्था में नागरिक को सरकार का साथ देना चाहिये। यदि वे कायरता दिखलाये गे तो उन्हे अन्य देशों का गुलाम होकर रहना पड़ेगा। परन्तु यह नियम उन्ही देशों मे चल सकता है जो हर प्रकार से स्वतत्र है और जिनकी स्वतंत्र राष्ट्रीयता है। किसी परतत्र देश के नागरिक सरकार के प्रति इतनी भक्ति नही रख सकते। राष्ट्रीय सरकार को ही यह श्रेय प्राप्त है कि अवसर पडने पर देश की जन-शक्ति का अपनी इच्छानुसार उपयोग करे और अपनी आवश्यकतानुसार उनसे त्याग कराये।

अध्याय ३

राज्य, उसकी उत्पत्ति और कार्य

The State, its Origin and Functions

राज्य की उत्पति (The Origin of the State)—

राज्य की उत्पत्ति के बारे मे विद्वानों के अलग अलग मत है। विश्व के इतिहास से इस बात का सही-सही पता नही चलता कि सब से पहिला राज्य कहाँ, कब और किस प्रकार स्थापित हुआ। दार्शनिकों का मत है कि राज्य एक ऐसी सस्था है जिसकी उत्पत्ति समाज के सगठन के साथ साथ ही हुई होगी।

राज्य की उत्पत्ति के विषय मे जो मुख्य सिद्धान्त (Theories) है वे नीचे दिये जाते है :—

(१) दैवी सिद्धान्त (Theory of Divine Origin)—इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों का मत है कि राज्य की स्थापना ईश्वर द्वारा ही हुई है और इसकी रचना केवल मनुष्य जाति के लाभ के लिये की गई है। राजा मनुष्य लोक मे ईश्वर का एक प्रतिनिधि है, और वह केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है। इस सिद्धान्त को ससार की विभिन्न धार्मिक सस्थाओं के अनुयायियों ने विशेष महत्व दिया है। परन्तु आज इस सिद्धान्त पर कोई श्रद्धा नही रखता।

(२) शक्ति सिद्धान्त (Force Theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य की उत्पत्ति बल, अथवा शक्ति से हुई है। बलवान मनुष्यो ने कमजोरो को दबाकर राज्य की स्थापना की है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य का आधार "जिसकी लाठी उसकी भैस है।" राज्य का सचालक शक्तिशाली गिरोह बन जाता है। यह बात आज भी कुछ कुछ सत्य सी प्रतीत होती है।

(३) सामाजिक समझौता सिद्धान्त (Social Contraef Theory)— इस सिद्धान्त के प्रवतक होवस (Hobbes) लॉक (Locke) और रूसो (Rousseau) है। इनके अनुसार मनुष्यों ने अपनी पाशविक-स्थिति से व्यथित

होकर अन्त मे, जान बूझ कर, एक दूसरे के हित के लिए, यह समझौता किया कि वे अब आपस मे लडना भिडना छोड़कर हिलमिल कर रहेंगे, तथा अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता और अधिकार अपने शासक के हाथ मे सौप देंगे। जो उनकी पूर्णतया रक्षा कर सकेगा।

(४) ऐतिहासिक या विकास सिद्धान्त (Historical or Evolutionary Theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार समाज की उन्नति के साथ साथ ही राज्य का भी विकास हुआ है। समाज के प्रारम्भ मे राज्य का सगठन बहुत ही साधारण और सरल था।

समाज की सभ्यता और सस्कृति के विकास के साथ साथ राज्य के विकास मे भी परिवर्तन होता गया। आजकल के अधिकतर विद्वानों ने राज्य की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त को सही मान लिया है।

इसके अलावा और भी कई सिद्धान्त हैं जैसे:—

(१) चेतना सिद्धान्त (Organic Theory)

(२) मातृ सिद्धान्त (Matriarcal Theory)

(३) पैत्रिक सिद्धान्त (Patriarcal Theory)

राज्य (The State)—पिछले अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि मनुष्य-समाज अनेक समुदायों (Associations) मे बटा हुआ है, जिनका नागरिक से घनिष्ठ सबन्ध है। प्रत्येक नागरिक अपने समुदाय के दूसरे सदस्यों से मिलजुल कर चलता है तथा दूसरे समुदायों के साथ भी सहयोग देने का पाठ उसे सीखना पडता है। समाज की उन्नति के लिये इन समुदायों मे परस्पर मेलजोल रहना परमावश्यक है। परन्तु स्वार्थ, असहनशीलता और पारस्परिक वैमनस्य के कारण

समुदायो मे लडाई झगडे होना स्वाभाविक ही है। इसलिये मनुष्य समाज मे एक ऐसी सस्था की आवश्यकता पडती है जो इन सब समुदायों मे मेलजोल रखकर समाज मे शान्ति की स्थापना कर सके। ऐसी सस्था को जो समुदायों मे सिरमौर रहकर उन पर नियत्रण कर सके हम राज्य (State) कहते हैं। राज्य के नियमों का पालन करना प्रत्येक नागरिक (Citizen) का कर्तव्य है। मनुष्य चाहे किसी भी समुदाय का सदस्य हो उसे राज्य के नियमों को अनिवार्य रूप से मानना पडता है। इसी कारण राज्य को समुदायों का भी समुदाय बताया जाता है। (The State is the association of associations प्रोफेसर बेनी प्रसाद लिखते है "राज्य (State) वह सघ (Association) है जो अन्य संघों (Associations) को एक दूसरे के साथ मेल जोल से रखता है।" राजनीतिज्ञों का मत है कि प्रत्येक राज्य को सुसगठित तथा स्वतत्र होना चाहिये जिससे समाज मे शान्ति व सुख की स्थापना हो सके।

राज्य के लक्षण(The Features of the State)—किसी भी स्वतत्र देश को जिसमे राजनीतिक सगठन हो राज्य (State) कहा जा सकता है। राज्य एक प्राकृतिक सस्था है। इसके लिये चार बाते आवश्यक है—

१. जनसख्या (Population)
२. निश्चित भूमि (Territory)
३. राजनीतिक संगठन (Unity)
४. राज सत्ता (Sovereignty)

बिना निश्चित भूमि और जनसख्या के किसी राज्य की स्थापना नही हो सकती। क्योंकि जहॉ कोई मनुष्य नही, वहॉ न कोई सगठन हो सकता है और न जीवन के किसी उद्देश्य

की पूर्ति ही। उद्देश्य की पूर्ति के लिये एकता की भी परमावश्यकता है। परन्तु ऐक्य तभी सम्भव है जब समाज मे एक ऐसी शक्ति हो जो सब समुदायों मे शान्ति रख सके।

भाषा, जाति, संस्कृति, धर्म आदि भी राज्य के गुण माने जाते है पर इन सबका राज्य (State) मे पाया जाना अनिवार्य नही है।

राज्य (State) समाज का प्राण है। राज्य के बिना मनुष्य का जीवन क्षणभर भी सुरक्षित नहीं रह सकता। प्रसिद्ध विद्वान अरस्तू का कहना है कि राज्य एक प्राकृतिक संस्था है और मनुष्य एक राजनीतिक (Political) जीव है। मनुष्य का पूर्ण विकास राजनीतिक समाज मे ही हो सकता है। इसी मे रह कर हम पूर्ण मनुष्यत्व को प्राप्त कर सकते है। इसलिये राज्य (State) को हमारे पूर्ण विकास का साधन माना गया है।

राज्य के कर्तव्य (Functions of the State)—राज्य की रचना केवल मनुष्य के कल्याण के लिये ही हुई है। समाज की सभ्यता का विकास राज्य के कर्तव्य-पालन पर बहुत कुछ निर्भर है। राज्य के कुछ कर्तव्य ऐसे है जिनके पालन के बिना समाज की रक्षा नही हो सकती। नागरिको की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक उन्नति के हितों की रक्षा के लिये राज्य को कई एक नियम बनाने पड़ते है, तथा ऐसे साधनो की व्यवस्था करनी पड़ती है जिनसे समाज का शासन नियमानुसार शान्ति-पूर्वक होता रहता है।

१. शान्ति और रक्षा (Peace and Order)—राज्य का सबसे पहिला कर्तव्य समाज मे शान्ति की स्थापना करना

है। बिना शान्ति के प्रजा की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक उन्नति नही हो सकती। जान और माल की रक्षा के बिना समाज का कोई काम नही चल सकता। राज्य मे शान्ति स्थापित रखने के लिए सरकार को पुलिस और सेना का सगठन करना पडता है। देश की बाह्य-शत्रुओं से रक्षा करने के लिए प्रत्येक राज्य को एक बहुत बडी सेना रखनी पड़ती है। विद्रोह तथा साम्प्रदायिक झगडो को दबाने के लिये भी कभी-कभी सेना काम मे लाई जाती है। आजकल ससार के उन्नतिशील राष्ट्रों मे विशाल तथा सुसगठित सेनाएँ रखी जाती हैं, तथा इनके सचालन मे राष्ट्रीय-बजट का एक बहुत बडा भाग खर्च होता है। सेना के मुख्य तीन भाग है :—स्थल सेना, (२) जलसेना (३) वायु सेना।

देश के आन्तरिक भागों मे पुलिस प्रजा की जान और माल की रक्षा करती है। पुलिस का मुख्य कर्तव्य चोर, डाकुओ को पकड कर न्यायालयों मे पेश कर दण्ड दिलाना है। नगरो, मेलों तथा सभाओं मे भीड के समय पर नियन्त्रण करना तथा रात मे पहरा देने का काम भी पुलिस किया करती है। पुलिस का काम बड़े उत्तरदायित्व का है क्योंकि सारे देश की आन्तरिक शान्ति और लोगो की जान-माल की रक्षा पुलिस के ही हाथ मे है। पुलिस के सिपाही शिक्षित होने चाहिए ताकि उनको अपने कर्तव्य का पूरा पूरा ज्ञान हो सके। पुलिस को किसी प्रकार का धार्मिक तथा जाति पाति का पक्षपात नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका मुख्य कर्तव्य समाज-सेवा है।

(२) न्याय की स्थापना (Justice)— सामाजिक जीवन के विकास के लिये न्याय की व्यवस्था अत्यावश्यक है। जिस राज्य मे न्याय (Justice) की समुचित व्यवस्था

न हो वहाँ अन्याय की वृद्धि होगी तथा समाज में अराजकता फैली रहेगी। बिना न्याय के समाज की उन्नति होना असम्भव है। जिस राज्य मे न्याय होता है वहाँ के नागरिक कानून का आदर करते है तथा उसके विरुद्ध आचरण करने से डरते है। न्यायालयों का मुख्य कर्तव्य राज्य के नियम की अवहेलना करने वाले अपराधियों को दण्ड देना है। समाज के छोटे अपराधों को रोकने के लिये बहुत से साधारण न्यायालयों की स्थापना करना अत्यावश्यक है। इससे नागरिकों के हितों की रक्षा होगी तथा लोग साधारण अपराध करने मे भी डरेंगे। न्यायालयों मे गरीब अमीर, ऊँच नीच, बडे छोटे सब के साथ एकसा व्यवहार होना चाहिये। न्यायाधीशों के लिये निष्पक्ष होना नित्तान्त आवश्यक है।

राज्य की न्याय व्यवस्था बहुत खर्चीली नही होनी चाहिये अन्यथा गरीब लोगों के लिये अमीरों के खिलाफ न्याय पाना असम्भव हो जायगा। लोग मुकदमेबाजी में तबाह हो जाते है क्योंकि कचहरियों तथा वकीलों का खर्चा बहुत होता है।

न्यायालयों को मुकद्दमे का फैसला देने मे अधिक समय नहीं लगाना चाहिए। बिलम्ब करने से लोग ऊब जाते है तथा दोषियों को ठीक समय अपने अपराधों का उचित दण्ड भी नही मिलता है।

सब से बडी आवश्यकता इस बात की है कि कचहरियों का कार्य लोगों की बोलचाल की भाषा मे ही हो, जिससे साधारण लोग न्याय का महत्व समझ सके तथा कानून के रहस्य को जान सके।

(३) शिक्षा (Education)—शिक्षा प्रचार प्रत्येक राज्य का एक मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि समाज की उन्नति शिक्षा

की उन्नति पर ही निर्भर है। शिक्षा प्रचार से लोग सभ्य, नम्र तथा स्वावलम्बी बन जाते है। देश मे अर्धविश्वासी लोगों की सख्या कम होकर शिक्षित तथा ज्ञानी लोगो की सख्या बढ़ती है। इससे देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दशा मे बहुत उन्नति होती है। मनुष्य को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे शिक्षा की आवश्यकता पडती है। आज कल लोगों की विचार-धारा प्रजातन्त्र राज्य (Democracy) की ओर है।

माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)—देश मे माध्यमिक (Secondary) तथा उच्च-शिक्षा (Higher Education) की भी पूरी व्यवस्था होनी चाहिए। पाठ्य-क्रम (Syllabus) देश की आवश्यकताओं को ध्यान मे रख कर बनाना चाहिए। प्रत्येक देश की सस्कृति और सभ्यता का वहाँ की शिक्षा से विशेष सम्बन्ध होता है। इसलिए सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा का आयोजन पाठ्य-क्रम मे होना चाहिए। आज कल उच्च-शिक्षा (Higher Education) का विशेष महत्व है। प्रत्येक हाई स्कूल और कालेज मे साहित्य, विज्ञान, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल, इतिहास, राजनीति आदि विषयों का विशेष प्रबन्ध होना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों को स्वतन्त्र-रूप से अपनी जीविका उपार्जन करने के योग्य बनाना है। इन सस्थाओ मे पुस्तकालय (Library) व्यायामशाला तथा खेलकूद का भी विशेष आयोजन होना चाहिए, क्योंकि खेलकूद आदि का जीवन के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(४) स्वास्थ्य और सफाई (Health and Sanitation)—प्रत्येक राष्ट्र का अपने नागरिकों के स्वास्थ्य की उन्नति करना मुख्य कर्तव्य है। इसी लिए हर एक राज्य को एक नए

विभाग की स्थापना करनी पड़ती है जिसको स्वास्थ्य-विभाग (Health Department) कहते है। कोई व्यक्ति अपनी उन्नति तथा देश सेवा करने मे बिना अच्छे स्वास्थ्य के समर्थ नही हो सकता। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने स्वास्थ्य की रक्षा करे। नगरों तथा गाँवों मे गदगी को रोकने के लिये म्युनिसिपेल्टियाँ बना दी जाती है जो शहरों और गाँवों मे सफाई का प्रबन्ध करती है। गदगी से कई रोग उत्पन्न होते है जैसे हैजा, प्लेग आदि। सरकार इन बीमारियों को रोकने के लिए विशेष प्रबन्ध करती है। रोगियो की सुश्रूषा के लिए नगरो मे जगह जगह अस्पताल खुले हुए है। भारत मे गॉवों की सख्या नगरों से बहुत अधिक है, गॉवों मे अच्छे डाक्टर और वैद्यों की बहुत कमी है, भारत सरकार को चाहिए कि गाँवों मे भी लोगों की चिकित्सा के लिए उचित सख्या मे अस्पताल खोले। समाज के स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए नागरिकों मे स्वास्थ्य के नियमो का प्रचार करना तथा सड़कों और नालियो को साफ रखना सरकार का कर्तव्य है।

सामाजिक-कल्याण (Social welfare)—ससार मे अधिकतर लोग दुखी तथा गरीब है। सरकार का कर्तव्य है कि गरीब लोगो, मजदूरों और किसानों की आर्थिक अवस्था को सुधारे तथा उनके भोजन, वस्त्र आदि का उचित प्रबन्ध करे। उनके बच्चो को पालन-पोषण कर उनको उचित शिक्षा दे, जिससे कि ये भविष्य मे अच्छे नागरिक बन सके तथा जीवन के आनन्द का उपभोग कर सके। सरकार का कर्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति को भी देश मे भूखा न मरने दे। ऐसे लोग जिनके हाथ-पॉव न हों या रोगी होन के कारण कोई काम न कर सकते हो उनके निर्वाह के लिए गरीब खाने (Poor Houses)

खोलने चाहिए। बेरोजगारों को रोजगार दिलाना भी आज कल सरकार का ही काम समझा जाता है। सरकार नए-नए उद्योग-धंधों की आयोजना करती रहती है जिससे प्रत्येक वर्ष हजारों लोगों को रोजगार मिलता रहता है।

मजदूरों की दशा सुधारने के लिए सरकार स्थान स्थान पर श्रम-अधिकारियों (Labour Officers) की नियुक्ति करती है। ये श्रम जीवियो की दशा का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके, सरकार को इसकी सूचना देते रहते है। जिससे सरकार उचित प्रबन्ध कर सके।

स्पष्टीकरण के लिए हम राज्य के कर्तव्यों (Functions) की इस प्रकार गणना करते है :—

(१) अनिवार्य कर्तव्य (Essential Functions)—ये कर्तव्य प्रत्येक राज्य के लिए अनिवार्य है :—

(a) बाह्य आक्रमण से रक्षा—सेना की आवश्यकता।

(b) देश मे शान्ति और व्यवस्था—सम्पत्ति की रक्षा, दगे, डाके आदि अपराधों को रोकने के लिए पुलिस तथा कानूनी अदालतों की स्थापना करनी पडती है।

(c) लोगों के झगडों का न्याय—नागरिकों के सम्पत्ति सम्बन्धी आपस के झगडे जैसे जमीन, लेन देन आदि का फैसला करना भी राज्य का कर्तव्य है।

(d) नागरिकों के अधिकारों का निर्धारित करना—इसके लिए सरकार को वोटरस् लिस्ट, इलेक्शन आदि का महत्व समझाना तथा प्रबन्ध भी करना है।

(e) दूसरे राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करना—

(२) ऐच्छिक कर्तव्य (Optional or Ministrant

functions)— ये कर्तव्य समाज मे सर्वसाधरण के कल्याण के लिए हैं।

(a) राज्य के आवश्यक उद्योग-धधों पर नियंत्रण तथा अधिकार—जैसे रेल, सडक, डाक, तार, बिजली, रेडियो, सिक्के आदि।

(d) अफीम, कोकीन, शराब आदि जहरीली औषधियों पर नियत्रण।

(c) व्यापार तथा कला-कौशल की उन्नति।

(b) श्रम जीवियों की स्थिति को सुधारना।

(e) स्वास्थ्य ना प्रबन्ध :—गॉव और नगरों मे हवा, रोशनी, पानी और बीमारियों को रोकने का प्रबन्ध।

(f) सिचाई —नहरे और ट्यूब वैल बनवाना।

(g) अधे, लूले, लगड़े तथा भिखारियों का इन्तजाम करना।

(h) शिक्षा प्रचार, पुस्तकालय, वाचनालय, और शिक्षा आदि का प्रबन्ध।

(i) सामाजिक कुरीतियों को वन्द करना।

(j) गणना (Census)

यदि वास्तव मे देखा जाय तो सरकार के कर्तव्यों की कोई पूरी सूची तैयार नही की जा सकती। सभ्यता के विकास के साथसाथ राज्य के कर्तव्यों की भी सूची वढ़ती जाती है। बहुत से कार्य जो आज नार्गारकों के निजी कतव्य समझे जाते है कल राज्य के कतव्यों की गिनती मे आ सकते है। राज्य के कर्तव्यों को सख्या दिन दिन वढती जाती है।

राज्य का कर्तव्य तथा नागरिकों का सहयोग (The functions of the State and the co-operation of citizens)—राज्य के कर्तव्यों की सफलता नागरिकों के

सहयोग बिना बिल्कुल नहीं हो सकती। सरकार के काम मे पूर्ण सहयोग देना नागरिकों का मुख्य धर्म है। समाज का हित और राज्य का हित दोनो भिन्न भिन्न नहीं है। समाज के हित से ही राज्य का हित होता है। इसलिए आवश्यक है कि राज्य जो कुछ भी कार्य समाज के हित के लिए करे उसमे प्रत्येक नागरिक को अपना सहयोग देना चाहिए।

अध्याय ४

नागरिक जीवन

Civic Life

हमारा सांस्कृतिक विकास (Our Cultural Development):— शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सांस्कृतिक विकास है। शिक्षित व्यक्तियों से यह आशा की जाती है कि वे समाज मे सभ्य जीवन व्यतीत करेगे। सभ्यता के इस निर्माण कार्य मे नागरिक के अन्दर नाना प्रकार की अच्छी बाते लाई जाती है। इसी से उनके अन्दर अच्छे विचारों तथा कार्यों की उत्तेजना पैदा होती है। किसी व्यक्ति को ऊपरी दबाव डाल कर थोड़े समय तक अच्छी बातो के लिए प्रेरित किया जा सकता है, लेकिन जब तक वह इनका आदी नहीं हो जाता तब तक न तो उस अच्छी बात को वह हृदयगम कर सकता है और न इससे उसका विकास ही हो सकता है। हमारा विकास तभी होता है जब हम अच्छी बातो को समझ कर उन्हे अपने जीवन का एक अग बना लेते है। प्रत्येक दशा मे अच्छी आदतों का डालना नितात आवश्यक है। शिक्षा-काल मे ही यदि बच्चो मे अच्छी आदते डाल दी जाती है तो वे जीवन मे प्रत्येक स्थान पर उन्नतिशील होंगे।

उनके अन्दर स्वावलबन का भाव, धैर्य, साहस, सफाई, समय की पावन्दी, वचन-पालन आदि गुण आरंभ से ही डालने की आवश्यकता है। ये गुण नागरिकता की जड़ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आनरिक तथा वाह्य शुद्धियों का उत्तरदाई होता है। समाज मे गंदा रहना न केवल अपनी वरन् दूसरों को भी हानि पहुँचाना है। यदि राष्ट्र के सभी व्यक्ति अपने शरीर तथा वस्त्रों को साफ-सुथरा रखे तो कुछ ही दिनों मे हमारे कौटुबिक जीवन मे एक नई शक्ति पैदा हो जायगी।

जव हम नागरिक की सफाई का वर्णन करते है तो हमारा तात्पर्य यही नही है कि लोग अपने शरीर और कपड़े को तो साफ रखें परन्तु उनकी बाकी चीजें अव्यवस्थित रीति से चलती रहें। सफाई करने से उतनी नही रहती जितनी सफाई रखने से रहती है। धोवियों से धुले हुए कपड़े पहनने वालों की सख्या समाज मे कम नही है। परन्तु साफ रहने वाले बहुत थोडे लोग दिखाई पडते है। जिसे साफ सुथरी जगहों पर बैठने तथा गदगी से अपने को वचाकर रखने की आदत नही है वह सफाई नही रख सकता। मनुष्य का कल्याण उसकी आदतों से ही हो सकता है। यही वात हमारे आन्तरिक भलाई के लिए है। भगवान वुद्ध का कहना है कि, जितनी भलाई माता-पित अथवा दूसरे भाई-वन्धु कर सकते है, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा चित्त करता है। जिसे सफाई का ध्यान है और उसे साफ रहने की आदत है वह कम से कम कपडे रखते हुए भी अधिक से अधिक साफ सुथरा रहेगा। मनुष्य अपनी रहन-सहन का जो दर्जा बना लेता है उसे वह कठिनाई मे भी निबाहने की कोशिश करता है। सफाई की तरह और अच्छे काम करने की आदत हम मे पड जाय तो हम जीवन की अनेक कठिनाइयों

से बच जायँगे। जो लोग छोटी-छोटी बातों के लिए झूठ बोलते रहते हैं और अपने थोड़े लाभ के लिए दूसरों को हानि पहुँचाते रहते हे उन्हे बुरी आदतों ने अपना दास बना रखा है। ऐसा करने से उन्हे कोई विशेष लाभ नहीं होता। फिर भी वे अपने को रोक नहीं पाते।

समाज मे अपनी उन्नति के लिए हम जितना औरों पर निर्भर करते है उससे कम हमे अपने आप पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। यदि हमारी बुद्धि और कार्य ठीक है तो हमे हानियों की आशंका कम होती है। सामाजिक सगठन मे सम्पत्ति, अधिकार तथा अन्य बाहरी वस्तुओं का अभाव हमे भले ही हो जाय परन्तु अच्छी आदतों तथा विचारों के लिये हमे दरिद्र रहने की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक समाज मे धन, बल और विचार इन तीनों शक्तियों का समन्वय न होने के कारण मनुष्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। लोगों का यह विचार गलत है कि सारी शक्ति धन में ही निहित है। एक विचारवान पुरुप, जिसके अन्दर दृढता, साहस, सचाई और ईमानदारी है, इस बात के लिये कभो लालायित नहीं रहता कि दूसरों को कष्ट पहुँचाकर अथवा धोखा देकर अपनी सम्पत्ति मे वृद्धि कर ले। विद्यार्थी जीवन से ही हमे उन तमाम अच्छी आदतों को ग्रहण करना चाहिये जिनसे हमे दूसरों पर निर्भर करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे विचार ही जीवन सग्राम में हमारे सच्चे मित्र होते है। किसी भी दशा मे अपने क्षणिक सुख के लिये हमे बुरे मार्गों का अनुसरण नहीं करना चाहिये। इससे हमारी अच्छी आदतें खराब हो जाती है और हमें कायर बनकर दूसरों की शरण लेनी पड़ती है। यदि देश के सभी बच्चे

जीवन निर्माण के इस सिद्धान्त से कार्य करें और माता-पिता तथा शिक्षक उन्हें इसका पाठ भली-भाँति पढ़ा दें तो उनके जीवन की आधी समस्या उन्होंने हल करा दी। इसके पश्चात् जब बच्चों को राष्ट्रीय जीवन मे प्रवेश करना होगा तो उन्हे कठिनाइयाँ न होंगी।

ग्राम जीवन (Village life)—भारतवर्ष गाँवों का देश है। इस देश मे सात लाख से अधिक गाँव है। ८० फी सदी जनता गाँवों मे रहती है। ग्रामवासियों का मुख्य पेशा खेती है। प्रत्येक देश का एक राष्ट्रीय पेशा होता है। भारतवर्ष का राष्ट्रीय पेशा खेती है। यहाँ के किसान सबेरे से शाम तक खेतो मे कार्य करते है। परन्तु इतने पर भी उन्हे भर पेट भोजन नही मिलता। इसके दो कारण है। जिस समय हिन्दू और मुसलमान जमाने मे किसानों की हालत अच्छी थी उस समय का इतिहास देखने से पता चलता है कि खेती के साथ साथ यहाँ के गाँवों मे और भी कई प्रकार के उद्योग-धन्धे होते थे। चरखा कातना, कपड़े बुनना, टोकरी और चटाई बनाना, नमक बनाना, चूडी बनाना आदि पेशे किसानो की आमदनी के जरिये समझे जाते थे। ब्रिटिश काल मे इन पेशो के नष्ट हो जाने के कारण गाँवो के रहने वाले किसान और मजदूर दोनो ही बेकार हो गये। उनका सारा भार खेती पर पड़ा। नतीजा यह हुआ कि वे धीरे धीरे गरीब और दुःखी होते गये। उनके हृदय मे आज न कोई उत्साह है, न उन्नति की अभिलाषा है। जब उन्हे उन्नति की ओर अग्रसर किया जाता है तो वे इसके महत्व को नही समझते। यह कहना कोई अनुचित न होगा कि गाँवों के घरेलू उद्योग-धन्धो के टूट जाने से वहाँ के किसान और मजदूरों की कमर टूट गयी।

उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने से जब ग्रामीण जनता की आर्थिक दशा बिगड गयी तो उनके अन्दर नाना प्रकार की कमजोरियाँ आती गई। शिक्षा का अभाव, सफाई की कमी, पचायतों का विनाश तथा सगठित जीवन की शून्यता ने उन्हे और भी पीछे ढकेल दिया। गाँवों मे चार या पाँच मील के घेरे मे छोटा मोटा स्कूल दिखाई पडेगा। इने गिने बच्चे थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त कर लेते है। बाकी लड़के छोटी आयु से ही अपने घरेलू काम-धन्धों मे लग जाते है, अथवा इधर-उधर घूमते-फिरते बुराइयों के शिकार बनते है। किसानो के पास इतना पैसा नही है जो वे वर्त्तमान काल की इतनी महँगी शिक्षा को अपने बच्चों को दिलाये। इसीलिये ग्रामीण जनता अशिक्षित होने के कारण अपनी कमाई का एक बहुत बड़ा हिस्सा मुकदमेबाजी मे खर्च कर देती है। कचहरियों मे तीन चौथाई मुकदमे गॉव से आते है। जब उन्हे शिक्षित और सुसस्कृत बनने का सुअवसर नहीं मिला तो वे कौन सा रास्ता ग्रहण करे। उनके अन्दर नम्रता, सद्भाव, सहन-शक्ति आदि शिक्षा सबधी गुण कहाँ से पैदा हों। इस देश की प्राचीन सस्कृति का यह बहुत बडा गौरव है जिसके प्रभाव ने आज भी किसानों के अन्दर अतिथि सत्कार तथा सेवा-भाव को कायम रखा है। यदि राष्ट्र को आगे बढना है तो ग्रामवासियों को शिक्षित बनाने का कोई नवीन और सस्ती योजना अवश्य बनानी होगी।

गॉवों मे सफाई का अभाव है। घर बिना किसी योजना के ही टेढे मेढ़े बना लिये जाते है। लोग रास्तों तक का ख्याल नहीं रखते। गॉवों के रास्ते पतले तथा टेढे-मेढ़े होते है। इसकी वजह यह है कि वहॉ सगठित जीवन का अभाव है। गरीबी के कारण गॉवों के कुओं की जगत बहुत ही नीची और गन्दी होती है। बरसात का सड़ा गला पानी बहकर उनमे गिरता

है। यदि आस-पास कोई तालाब हुआ तो उसके कारण और भी गन्दगी फैलती है। आदमी और जानवर सभी उसमें स्नान करते है। लोगों को इस बात का शौक नही है कि सप्ताह या महीने में एक रोज़ गाँवों के रास्तों तथा कुओं की सफाई की ओर ध्यान दें। उनके हृदय से मानो सार्वजनिक जीवन का भाव निकलता जा रहा है। यदि वे थोड़ा भी इस ओर ध्यान दें तो गाँवों के रास्ते चौड़े बन सकते है, सब के दरवाजे साफ सुथरे रह सकते है, कुओं की जगह अच्छी और साफ हो सकती है, तथा जगह जगह बैठने के लिये पेड़ों के नीचे चबूतरे बनाये जा सकते है। किसी समय हर गाँव मे एक चौपाल होती थी, जो उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों मे आज भी कहीं कहीं पाई जाती है। गाँव से बाहर अथवा इसके बीच मे एक मकान अतिथियों के ठहरने तथा सार्वजनिक उत्सव के लिये बना रहता था। इसी को चौपाल कहते थे। इन्हीं मे रात को रामायण, महाभारत, आल्हा तथा बिरहा आदि तरह-तरह के गाने होते थे और गाँवों में बड़ी चहल-पहल रहती थी। यह सारा जीवन आज एक स्वप्न की तरह दिखाई पड़ता है। चहल पहल तो दूर रही लोग साधारण सफाई तथा रहन-सहन के सिद्धान्तों को भी भूल गये। राष्ट्रीय संगठन के टूट जाने से उन्हें कोई उत्साहित करने वाला न रहा।

हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सगठन का सबसे बड़ा अग गाँवों की पचायतें है। गाँव के ५ या ७ सब से नेक व्यक्तियों की सभा का नाम पचायत होता है। यही सभा हर प्रकार के झगडों का निपटारा, सफाई, बाजार, खेल-कूद आदि का प्रबन्ध करती है। प्रत्येक गाँव मे इस तरह की पचायत बनाई गई है। कई गाँवों को मिला कर एक बड़ी पंचायत भी होती है। जब कोई बड़ा मामला आता है तो वह बडी पंचायत के सामने

रखा जाता है। हर पेशे के लोग इसके सदस्य होते हैं। पंचायत की आज्ञा सबको माननी पड़ती है। मदरास की एक सरकारी रिपोर्ट मे यह जिक्र किया गया है कि प्राचीन काल मे एक गाँव मे किसी आदमी ने अपने पड़ोसी को जान से मार डाला। जिले की सबसे बड़ी पंचायत के सामने मामला पेश किया गया। पचायत ने यह फैसला किया कि अपराधी की इच्छा प्राण लेने की न थी, अतएव इसे फाँसी का दंड न मिलना चाहिये। उसे यह सजा दी गयी कि वह गाँव के मंदिर में वर्षों तक दीपक जलाता रहे। तामील जिले मे एक ग्राम पचायत के सामने चोरी का मामला पेश हुआ। एक महीना पहले किसी ब्राह्मण के घर मे चोरी हुई थी। ब्राह्मण ने तुरन्त पुलीस को इसकी इत्तला दे दी थी। पुलीस को जब चोरी का कुछ पता न चला तो उसने यह कह कर इन मामले से हाथ खींच लिया कि चोरी का मामला झूठा है। जब यह बात ग्राम-पचायत के सामने पेश की गयी तो पचायत ने उस ब्राह्मण को बीस रुपया इसलिये जुर्माना किया कि पचायत की अव-हेलना करके उसने पुलीस को इसकी इत्तला क्यो दी थी। यह रुपया ग्राम के सार्वजनिक कामों में खर्च किया गया। इसके बाद चोरी की जाँच पड़ताल शुरू हुई। चार प्रधान व्यक्तियों को यह कार्य सौंपा गया कि वे चोरी का पता लगावे और चाहे जैसे हो ब्राह्मण को ३०० रुपये का जेवर वापिस करे।

प्राचीन काल मे पचायत के अतिरिक्त गाँवों के प्रबन्ध के लिये कुछ और भी कर्मचारी होते थे। गाँव का मुखिया इसका प्रधान होता था। हिसाब किताब रखने तथा खेतों की जाँच पड़ताल करने के लिये एक पटवारी होता था। रात को रखवाली करने के लिये प्रत्येक गाँव मे एक चौकीदार रहता था। इनके अतिरिक्त

बढई, लोहार, धोबी, नाई, ग्वाला, वैद्य, गायक, कवि, नतक, भाँड़ आदि कर्मचारी होते थे। इन्हें प्रत्येक घर से सालाना अन्न दिया जाता था। इन कर्मचारियों के कारण समस्त गाँवों का एक दृढ सगठन था जिसकी शक्ति से राष्ट्रीय जीवन सगठित और सुखी था। किसी न किसी रूप मे ये कर्मचारी आज भी पाये जाते है। परन्तु वहाँ संगठित जीवन का इतना अभाव है कि छोटे मोटे सार्वजनिक कामों की ओर भी लोगों की रुचि नही होती। एक लम्बे अर्से तक बिना किसी सगठित जीवन में रहने के कारण उनके अन्दर कुछ ऐसी कमजोरियाँ आ गई है जिन्हे निकाल फेंकना उनकी उन्नति की पहली आवश्यकता है। समाज सुधारकों ने इस कमजोरी को पहचाना है। कुछ विद्वानों का कहना है कि यदि ग्रामवासी स्वावलम्बी बना दिये जायँ तो उनकी अन्य कमजोरियाँ जाती रहेंगी। कुछ का विश्वास है कि यदि वे शिक्षित कर दिये जायँ तो उनकी उन्नति का रास्ता खुल जायगा। महात्मा गाँधी का कहना था कि ग्रामवासियों में शासकों के दबाव के कारण कायरता आगई है। इसलिये सबसे पहले उन्हे निर्भय बनाना है। यदि वे निर्भय हो जायँ तो बडी से बड़ी शक्ति उनकी उन्नति को नही रोक सकती। यद्यपि इन विचारों मे काफ़ी मतभेद है फिर भी यह सन्तोष की बात है कि स्वतन्त्रता के बाद सरकार का ध्यान ग्रामोन्नति की ओर आकर्षित हुआ है। राष्ट्रीय शक्ति, जो सदियों से शहरों मे ही सकुचित होती जा रही थी अब गाँवों मे विस्तारित की जा रही है। इस दशा मे जनता का सहयोग पूरी तरह मिलता गया तो ये पिछड़े हुए गाँव कुछ ही वर्षो मे सगठित तथा हरे भरे दिखाई देंगे।

शहरी जीवन (City life)— भारतीय जीवन का

एक अश शहरों मे भी व्यतीत हो रहा है। सरकारी कर्मचारी, व्यापार करने वाले तथा शहरी जीवन के शौकीन लोग शहरों में ही निवास करते हैं। यद्यपि इन शहरों की सख्या बहुत थोडी है परन्तु इनका सगठन बहुत ही सुव्यवस्थित है। छोटे से छोटे शहर मे अनेक शिक्षा सस्थाएँ, . पुस्तकालय, अस्पताल, पार्क, सडकें, सिनेमा घर, क्लब तथा और भी कितने ही प्रकार के स गठन पाये जाते हैं। इनके प्रबध के लिये शहर निवासियों की ही एक कमेटी होती है जिसे म्युनिसिपल बोर्ड कहते है। यह कमेटी शहर की सफाई, शिक्षा, पानी, रोशनी तथा अन्य प्रकार की उन्नति की देख-रेख करती है। चूँकि पढे लिखे लोग अधिकतर शहरों मे ही रहते हैं इसलिये शहरी जीवन मे सभ्यता की एक ऊँची झलक दिखाई पडेगी। शहर व्यापार के केन्द्र है। ग्राम-निवासी यही से अपनी आवश्यकता की चीजे खरीदते है। सगठित जीवन मे रहने के कारण शहर के निवासियों मे नये जीवन की आशा पाई जाती है। जिन्हे शहरों मे आने का अवसर नही मिलता वे नवीनता से वचित रह जाते है। नये विचारों का श्री गणेश इन्ही शहरों से होता है। बडी-बडी सभाएँ तथा अधिवेशन आदि इन्ही शहरों मे होते है। सगठित जीवन होने के कारण यहाँ काम करने मे सुविधा होती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये सवारियों की भरमार रहती है। यही कारण है कि पिछले ३०-४० वर्षो से गाँवों की जनता एक बहुत बडी सख्या मे शहरों मे आने लगी है। इनमे से बहुत काफी लोग नौकरी तथा रोजगार के सहारे शहर के ही निवासी हो गये है। शहरों की तरह गाँवों का प्रबन्ध करने के लिये भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड नाम की एक सभा प्रत्येक जिले मे बनाई गयी है परन्तु उसे ग्रामीण जीवन को सगठित करने मे अधिक सफलता प्राप्त नही हुई है।

म्युनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि इनसे शहरी तथा ग्रामीण जीवन में एक विशेष उन्नति होगी। इन संस्थाओं ने इस दिशा में अनेक कार्य करने का प्रयत्न किया है। इतने पर भी इन्हें वह सफलता प्राप्त नही हुई है जो स्थानीय संस्थाओं को होनी चाहिये। इसके दो कारण बतलाये जाते है। कुछ तो इनके पास अधिकार तथा धन की सदैव कमी रहती है जिससे इच्छा रखते हुए भी ये कोई बडा कार्य नही कर सकतीं। अपने क्षेत्र मे कार्य करने की इन्हे पूरी स्वतन्त्रता नही है। इसके अतिरिक्त एक दूसरा कारण नागरिकों मे ही पाया जाता है। इन सस्थाओं मे जाकर लोग अपने निजी स्वार्थ को इतना प्रमुख स्थान दे देते है कि कुछ ही दिनों मे वे जनता मे बदनाम हो जाते है। लोगों का उनमे से विश्वास निकल जाता है। उनके अच्छे विचारों को भी जनता कोई महत्त्व नही देती। अपने परिचित तथा सबधियो को कार्य दिलाने तथा पैसे पैदा कराने की अभिलाषा उनमे इतनी बढ़ जाती है कि वे कितने ही अयोग्य व्यक्तियों को बड़ी-बडी जगहों पर पहुँचा देते है। इससे कार्य मे बाधा पडती है। परन्तु इन कमजोरियो से हमे निराश होने की आवश्यकता नही है। राष्ट्रीय उन्नति मे हम ऐसा विधान बना सकते है जिसमे इन सस्थाओ के अधिकार बढा दिये जायँ और इनकी कार्य-पद्धति सुव्यवस्थित हो जाय। इनके द्वारा हमारा स्थानीय जीवन बहुत ही सगठित तथा उन्नतिशील बन सकता है। शिक्षा की वृद्धि के साथ जब लोगों मे नागरिकता की भावना बढ़ रही है तो इन सस्थाओं का भी भविष्य उज्ज्वल दिखाई पड़ता है।

राष्ट्रीय जीवन—(National Life) शहर अथवा गाँवों मे रहने के कारण राष्ट्रीय जीवन मे कोई विभाजन नहीं होता। स्थानीय जीवन के भेद-भाव से राष्ट्रीय एकता मे कोई

रुकावट नहीं पड़ती। देश की सम्पूर्ण जनता चाहे वह शहर मे रहे अथवा गाँव मे, इस बात के लिये उत्तरदायी है कि उसका राष्ट्रीय जीवन कैसा है। राष्ट्र की मर्यादा एक है। उसका निर्माण कार्य एक सिद्धान्त पर किया जाता है। देश की सरकार, उसका गौरव, उसकी एकता, उसकी संस्कृति, उसका स्वाभिमान, उसकी सेवा, उसका त्याग इत्यादि सभी चीजे राष्ट्र को एक समझ कर की जाती हैं। हिंदुस्तान के बाहर का कोई देश इस बात की परवाह नही करता कि कितने हिन्दुस्तानी शहरों मे और कितने गाँवों मे रहते है। उसके लिये यह भेद-भाव कोई अर्थ नहीं रखता। ऐसी दशा मे राष्ट्रीय जीवन को एक समझ कर देश वासियों मे देश-भक्ति की भावना समान रूप से जागृत होनी चाहिये। अब हमे इस बात का वर्णन करने की आवश्यकता है कि देश-भक्ति क्या है और इसका प्रादुर्भाव नागरिको के अन्दर कैसे होता है। हम कैसे कह सकते है कि अमुक व्यक्ति देश-भक्त है और अमुक के अन्दर देश-भक्ति का अभाव है। इसके बाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार के लक्षण हैं। फिर भी इसे पहचानने की शक्ति सभी लोगों मे नही होती। एक साधारण आदमी जिसे देश, भक्त नही समझता उसी की आगे चलकर देश मे पूजा हो सकती है।

राष्ट्रीयता अथवा देश-भक्ति नागरिकों मे उस भावना को कहते है जिससे उन्हे अपना देश अपना घर मालूम पड़ता है और समस्त देशवासी अपने भाई-बन्धु जान पड़ते है। इस प्रकार की भावना जिसके मन मे पैदा होती है वह अपने देश की परम्परा, उसका इतिहास, उसकी सभ्यता तथा उसकी समस्त चीजों मे एक विशेष आसक्ति रखता है। दूसरे देशो की चीजों पर वह लट्टू नहीं होता। जैसे अपना कुरूप भी बच्चा सब को प्यारा होता है और दूसरों के सुन्दर बच्चों के सामने हम उसे

फेंक नहीं देते उसी प्रकार राष्ट्रीय भावना के पैदा होने पर अपने देश की सभी चीजें महत्त्वपूर्ण दिखाई पडती है। देश-भक्ति की पहचान दो प्रकार से होती है। कुछ तो बाहरी दृष्टियों से हम पहचान सकते है कि कौन राष्ट्रीय है और कौन विदेशीय है। प्रत्येक देश की एक राष्ट्रीय वेश-भूषा होती है। जहाँ कही भी उस देश के निवासी मिलेगे लोग उन्हे उसी वेश-भूषा मे पायेंगे। विदेशी शासन के कारण हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय वेश-भूषा आज इतनी बिगड़ी हुई है कि किसी भी पोशाक को भारतीय कहने मे हमें सन्देह होता है। कुछ अंग्रेजी पोशाक मे, कुछ मुसलमानी पोशाक में और कुछ मिश्रित पोशाक में लोग पाये जाते है। जिसे जो अच्छा लगता है वह उसी की नकल कर लेता है। परिणाम यह है कि भारतीय वेश-भूषा नाम की कोई चीज स्पष्ट दिखाई नही पडती। काँग्रेस के राष्ट्रीय प्रयत्न से एक भारतीय वेश-भूषा का प्रभाव बढ़ रहा है और संभव है किसी दिन यही इस देश की राष्ट्रीय पोशाक मान ली जाय। गान्धी टोपी, धोती और चप्पल यही यहाँ की राष्ट्रीय पोशाक है। इसमे भी यह शर्त है कि ये सभी चीजे अपने ही देशवासियों के हाथ की बनाई हुई हों। अर्थात् खद्दर का वस्त्र और स्वदेशी चमड़े का चप्पल होना चाहिये। इसी प्रकार खान-पान से भी राष्ट्रीयता का आभास होता है। हर देश का रहने वाला अपनी जलवायु तथा भौगोलिक स्थिति के अनुसार अपना खान पान बनाता है। ठंडे देशों के रहने वाले माँस, मछली, शराब, तथा मसाले आदि की ओर चीजे इसलिये ग्रहण करते है कि उन्हें इस चीज की आवश्यकता पडती है। इस दिशा में भी भारतवासियों मे एक अभाव पाया जाता है। या तो लोग अपनी प्राचीन रूढ़ियों के अनुसार पुराने तरीकों को ही बरतते है अथवा यूरोप निवासियों की नकल

कर लेते है। आधुनिक युग के साधनों के अनुकूल जैसे हम अपनी राष्ट्रीय वेश-भूषा निश्चित न कर सके उसी तरह खान-पान को भी हम कोई राष्ट्रीय रूप न दे पाये।

केवल बाहरी चिन्हों से राष्ट्रीयता का निर्णय करना अपने को धोखे मे डालना है। यद्यपि नकल करने के लिये भी अभ्यास की आवश्यकता पडती है, फिर भी इसकी पहचान मे लोगों को धोखा हो सकता है। वेश-भूषा लोगों की पहचान मे एक सहायक हो सकती है परन्तु एक मात्र इसी के बल पर किसी मनुष्य को पहचानना सरल नहीं है। राष्ट्रीयता की पहचान मे कुछ आन्तरिक विचार भी सहायक होते है। हमारे अन्दर यदि अपने राष्ट्र के प्रति श्रद्धा है तो हम मे दो चार बाते विशेष रूप से से दिखाई देगी। हमारे कार्य अपने देश की परम्परा के अनुकूल होंगे। हमारा जीवन अपनी सभ्यता के एक अंग की पुष्टि करेगा। हमे अपने इतिहास का अभिमान होगा और प्रत्येक अवसर पर हमारे ऐतिहासिक महापुरुप अपने आदर्शों से हमारे कार्य को सिद्ध करेगे। अपने देश की संस्कृति मे हमे इतना अधिक विश्वास होगा कि औरों की नकल करने के बजाय हम अपनी ही चीज को वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न करेगे। हमारे प्रत्येक कार्य मे आत्मोन्नति तथा देशोन्नति दोनो प्रकार की भावनाओं का समावेश होगा। राष्ट्रीयता इस बात का द्योतक है कि देशवासियों को अपनी उन्नति के लिये दूसरों पर अवलंबित होने की आवश्यकता नहीं है। अपने उत्थान के लिये हम गैर मुल्कों से सैकड़ों प्रकार की बाते सीख सकते है। परन्तु राष्ट्रीयता के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हे अपने रूप मे ढाल ले। जैसे एक कलाकार मिट्टी, रंग तथा अन्य वस्तुओं की सहायता से एक मूर्ति का निर्माण कर लेता है और उसमे उसके व्यक्तित्व की छाप होती है, उसी

तरह नागरिकों को चाहिये कि वे विदेशों की सैकड़ों चीजें लेकर अपने जीवन में इस प्रकार ढालें जिससे उनका विदेशीपन जाता रहे। जिस राष्ट्र के अन्दर इस कार्य की जितनी अधिक शक्ति होती है वह उतनी ही जल्दी उन्नति करता है। संकुचित भावना को लेकर राष्ट्रीयता की रक्षा नहीं होती। राष्ट्र भाषा राष्ट्रीयता मे बहुत बड़ी सहायक होती है। जब तक सम्पूर्ण देशवासी एक दूसरे के विचारों को नही समझ सकते, तब तक उनमे एकता का भाव उत्पन्न नही हो सकता। उपरोक्त चीजो मे जिस राष्ट्र की दृढ़ता जितनी अधिक होगी संसार मे उसका उतना ही अधिक गौरव होगा।

भारतीय राष्ट्रीयता के इस उत्थान मे कुछ ऐसी कठिनाइयाँ है जिनको जानकारी करना अनिवार्य है। यदि हमारे पूर्वज किसी कार्य मे बार बार कठिनाइयों का सामना करते रहे तो हम उन कठिनाइयो को तभी पार कर सकते है जब उनकी असफलता का इतिहास हमारे सामने आ जाय। वर्तमान समय मे भारतवासियो का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकृष्ट है कि उनका राष्ट्र किसी से पीछे न रहे। उनके अन्दर राष्ट्रीयता के सभी गुण आ जायें। इस मार्ग मे उन्हे जिन कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है वे ऐसी टेढ़ी है कि उन्हे दूर करने मे एक बहुत बड़े तप और त्याग की आवश्यकता है। पहली कठिनाई राष्ट्र भाषा की है। प्रान्तीय भाषाएँ तो सारे देश मे अलग अलग पाई जाती है, परन्तु अंग्रेजी के अतिरिक्त कोई ऐसी भाषा नही है जो सारे राष्ट्र मे बोली और समझी जाती हो। 'हिन्दी परिषद्' की स्थापना इसीलिये की गई है कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाया जाय। राष्ट्रीयता की दूसरी कठिनाई नागरिक शिक्षा का अभाव है। इस देश की शिक्षा मे वह राष्ट्रीय तत्त्व नही है जिससे लोगों के अन्दर स्वाभिमान तथा आत्म गौरव

का भाव पैदा हो। इन कठिनाइयों के कारण हमारा नागरिक जीवन वह रूप धारण नही कर पाता जिसमें हमारे भारतीय जीवन की असली छाप दिखाई दे।

अध्याय ४

विभिन्न समुदाय

Various Associations

समुदाय का तात्पर्य (Purpose of Association)—यद्यपि समाज एक इकाई है और समस्त मानव समाज एक दूसरे से किसी न किसी प्रकार सबद्ध है, फिर भी कार्य तथा विचारों की सुविधा के लिये छोटे-छोटे सगठन दिखाई पड़ते हैं। इन्हें बनाने की आवश्यकता इसलिये पडती है कि छोटे दायरे मे मनुष्य की बुद्धि अधिक सुचारु रूप से कार्य करती है। इसीसे सामूहिक कार्यों का अभ्यास होता है। कुछ विद्यार्थी अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिये हर इतवार को इकट्ठे होते है। उनका यह सगठन उन्हें इस बात का अवसर देता है कि वे एक दूसरे के अनुभव तथा प्रतिभा से लाभ उठायें। किसी बडे समूह मे एक व्यक्ति अपने विचारों को तब तक नहीं रख सकता जब तक उसे यह कला मालूम न हो कि स्पष्टीकरण कैसे होता है। केवल एक दो दिन के अभ्यास अथवा तत्काल किसी बडी भीड मे बोलने से इस क्षेत्र मे सफलता नहीं मिल सकती। कोई भो बडा विचार पहले एक छोटे से सगठन से आरभ होता है। इससे पहले वह विचार किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क की चीज होती है। जब वह छोटे सगठन मे कुछ दिन टिक जाता

है और विचारों के आदान-प्रदान से वह परिमार्जित हो जाता है तब वह एक सामूहिक विचार बनता है। फिर उसके अन्दर एक ऐसी शक्ति पैदा होती है जिसे कोइ पीछे नही हटा सकता। छोटे मोटे विचारों को उसके आश्रित होकर रहना पड़ता है। महापुरुषों के विचार इसी क्रम से ससार मे फैले है और फैलते रहेगे। इन्ही छोटे-मोटे सगठनों को समुदाय (Association) कहते है।

जब तक व्यक्ति अपने विचारों को अपने ही तक सोमित रखता है तब तक उसका कोई विशेष सामाजिक महत्त्व नहीं है। वह उससे स्वय आनन्द प्राप्त कर सकता है अथवा दूसरों को समय समय पर प्रभावित भी कर सकता है परन्तु उसका गौरव उसके शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है। यदि वह अपना यह विचार किसो समुदाय को प्रदान किये होता तो संभव है वह एक समाज की स्थायी वस्तु होतो। इससे न मालूम कितने ही लोगों को लाभ पहुँचता।

कुटुम्ब *(Family)— जिन जिन जगहों पर हम कामों* के लिये जाते है और जितने प्रकार के लोगों से मिलते है उतने ही प्रकार के समुदाय होते है। कुटुम्ब भी एक समुदाय है। यह सामाजिक जीवन का प्रधान अग है। पृथ्वी पर कोई देश ऐसा नही है जहाँ कुटुम्ब का सगठन न हो। जगली जीवन मे कुटुम्ब की रचना नहीं हुई थो। मनुष्य जगलों मे रहता, इधर उधर घूमता और जगली पशुओं को मारकर अपना पेट भरता था। झुड के झुड मनुष्य साथ साथ रहते थे। जब लोगों ने जगलो को साफ किया और पशु पालना आरभ किया तो उन्हे एक निश्चित स्थान पर रहने की आवश्यकता पड़ी। कृषि आरंभ हुई ओर ग्रामों की स्थापना हुई। ग्रामों मे भिन्न-भिन्न कुटुम्ब बन गये। लोग अलग अलग अपना घर बनाकर

रहने लगे। माता-पिता, स्त्री-बच्चे एक एक कुटुम्बी हो गये। कुटुम्ब मे जब मनुष्यों की सख्या बढ़ जाती तो उसी मे से कई कुटुम्ब बन जाते। आज भी एक कुटुम्ब के लोग दो या अधिक कुटुम्बों मे विभाजित हो जाया करते हैं। इसी तरह गाँवो की आबादी बढती गयी।

बच्चा किसी कुटुम्ब मे जन्म लेता है। माता-पिता के सम्पर्क मे आकर वह उनसे बहुत सी बाते सीखता है। यहीं से उसका सामाजिक जीवन आरभ होता है। जो बाते वह बाल्यावस्था मे सीखता है उसका प्रभाव उसके मस्तिष्क पर गहरा पड़ता है। यदि माता-पिता योग्य हुए तो बच्चा भी चरित्र-वान होगा। कुटुम्ब बच्चों के लिये एक प्रकार का स्कूल है, जहाँ वह सना बाते सीख सकता है। माता-पिता की आज्ञा पालन करके उसे जीवन मे आज्ञा पालन की शिक्षा मिलती है। जो लडके अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लघन करते है वे आगे चलकर राजकीय नियमो की भी अवहेलना करते है। नियम पालन उन्हें भार मालूम पडता है। आज्ञा पालन के अतिरिक्त सयम की शिक्षा कुटुम्ब से ही आरभ होती है। कोई व्यक्ति अपने लड़के को असयमी नही बनाना चाहता। बालक को जितना अवसर अपने कुटुम्ब मे उन्नति करने का प्राप्त होता है उतना किसी अन्य समुदाय मे नही। स्वभाव से ही बच्चा अपने माता-पिता से प्रेम करने लगता है। माता-पिता भी बडी लगन से अपने बच्चे की देख भाल करते है। इस लगन के अन्दर प्रेम का बहुत बडा अकुर छिपा रहता है। वही बच्चा जब सयाना होता है तो अपने कुटुम्ब का स्वामी बनता है। जो कुछ शिक्षा उसने अपने जीवन काल मे प्राप्त की उसका प्रयोग वह अपने बच्चों पर करता है। इस प्रकार कौटुम्बिक-जीवन का चक्र चलता रहता है।

हमारे देश में कुटुम्ब का मतलब केवल स्त्री और पुरुष से नहीं है। भारतीय कुटुम्ब में दो दो पीढ़ियों तक के लोग एक ही घर में रहते हैं। उनकी सम्मिलित सम्पत्ति होती है और उनका एक स्वामी होता है। यहाँ पर लड़के को अपने ही माता-पिता की आज्ञा का पालन नहीं करना पड़ता बल्कि उन सब के सम्मान का ध्यान रखना पडता है जो उससे आयु में बड़े हैं। यदि कुटु ब ने बच्चे को अपनी इच्छानुसार चलने दिया तो आगे चलकर इसका प्रभाव कुटुम्ब तथा देश के लिये हानिकारक होता है। निःस्वार्थ सेवा की भावना कुटुम्ब से प्रारभ होती है। माता-पिता अपने सुख का उतना ध्यान नहीं रखते जितना अपने बच्चे के। प्रकृति ने स्वभाव से ही मनुष्यों में इतनी सहन शक्ति दी है कि वह अपने बच्चे के लिये सभी प्रकार का कष्ट उठावे। गरीब से गरीब अपने बच्चे का उतना ही ध्यान रखता है जितना एक धनी। दोनों की सहानुभूति एक सी होती है। छोटी छोटी बातों की शिक्षा कुटुम्ब से आरभ होती है। खाना, पीना, उठना, बैठना इनका भी एक ढग हुआ करता है। कुटुम्ब को छोड कर किसी अन्य समुदाय मे इनकी शिक्षा का उचित प्रबध नही हो सकता। इनका सीखना उतना ही आवश्यक है जितना बड़ी बड़ी परीक्षाओं को पास करना। जीवन मे जितनी आवश्यकता इन नियमों की पडती है उतनी बड़ी बडी बातों की नही।

आर्थिक दृष्टि से कुटुम्ब का महत्व व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा है। कुटुम्ब मे सभी प्रकार के लोग होते है। कोई अपनी बुद्धि और बल से अधिक और कोई थोड़ा पैदा करता है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते है जो कुछ भी नही कमा सकते। शारीरिक तथा मानसिक कमजोरियों के कारण वे किसी प्रकार का कार्य नही कर सकते। इतना अंतर होते हुए भी कुटुम्ब में सब का

भोजन एक जगह और एक समान बनता है। कुटुम्ब का स्वामी इस बात का ध्यान रखता है कि आपस में किसी प्रकार का भेद भाव न होने पाये। वह स्वयं कष्ट उठायेगा पर औरों का ध्यान रखेगा। कुटुम्ब में सब के अलग अलग कार्य बँटे होते हैं। सब को पूर्ण स्वतंत्रता होती है। फिर भी एक दूसरे से लोग सहमत और हृदय से अपने कार्य मे तत्पर रहते है। व्यक्ति चाहे कितना ही परिश्रमी क्यों न हो अपनी आमदनी को कुटुम्ब से अलग नही समझता। यदि कोई मनुष्य कुटुम्ब मे रहते हुए खान-पान में किसी तरह का भेद-भाव करता है तो सारा समाज उसे बुरा ठहराता है। इसी भय के कारण कौटुम्बिक जीवन में सर्वत्र एकता और समता दिखलाई पडती है। कष्ट में एक दूसरे को सहायता देना, कठिन अवसर पर अपने को आगे रखना तथा कुटुम्ब के अधिकार के लिये सदा तत्पर रहना, इत्यादि बातों की परीक्षा पहले कुटुम्ब मे होती है।

शासन की दृष्टि से कुटुम्ब एक प्रकार का राज्य है। जिस प्रकार राज्य मे एक राजा होता है, बहुत से नियम होते है और सम्पूर्ण प्रजा उनका पालन करती है, उसी तरह प्रत्येक कुटुम्ब का स्वामी होता है। कुटुम्ब के सचालन के लिये कई नियम होते है जिनका उन्हे पालन करना पड़ता है। कौटुम्बिक जीवन मे ही स्वामी और सेवक का भाव उत्पन्न होता है। यद्यपि ये नियम लिखित नही होते फिर भी सभी लोग इनका पालन करते है। राज्य की आज्ञा भग हो सकती है ; परन्तु कुटुम्ब के नियम को कोई नही तोड़ सकता। राजा और प्रजा मे अकसर भेद-भाव उत्पन्न होते रहते है परन्तु कौटुम्बिक जीवन मे ऐसे अवसर कम आते है। यदि किसी कारण वश कोई कुटुम्ब के नियम को भङ्ग करता है तो बिना किसी विरोध के वह स्वामी के दड को सहन करता है। इसीलिये कुटुम्ब को राज्य का एक छोटा रूप कहा

गया है। जो जो गुण राज्य में दिखाई पड़ते हैं वे सब कुटुम्ब में भी पाये जाते हैं। कुटुम्ब राज्य से बढ कर है। यदि प्रत्येक कुटुम्ब अपने अधिकार और कर्तव्य का पालन करे तो सरकार की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। जिस राज्य मे कौटुम्बिक जीवन सुसंगठित नही है वहाँ राजकीय नियमों की अवहेलना अधिक होती है, लोगों में प्रेम और सहानुभूति का अभाव होता है। कौटुम्बिक जीवन को नष्ट कर मनुष्य एक बहुत बड़े समुदाय से हाथ धो बैठेगा। जो स्वाभाविकता इस सगठन मे है वह किसी और में नही दिखलाई पड़ती। किसी कुटुम्ब के लोग उसी समय अपना सबध विच्छेद करते है जब उन्हे एकता का और कोई मार्ग नही दिखाई पड़ता। समाज मे उस कुटुम्ब की कड़ी आलोचना की जाती है जिसमे लोग मिल जुल कर नही रहते।

जब कुटुम्ब का इतना अधिक महत्व है तो इसके सगठन के लिये सभी प्रकार का प्रयत्न करना चाहिये। आजकल समाज मे जो उथल पुथल दिखाई पड़ती है उसका बहुत कुछ कारण हमारे पारिवारिक जीवन का ह्रास है। पाश्चात्य सभ्यता हमारे देश मे इतनी अधिक फैल रही है कि हमारे सभी सगठनों और समुदायों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। आजकल स्त्री और पुरुष इन्ही को लोग कुटुम्ब समझते है। कितने ही व्यक्ति विवाह के पश्चात् अपने माता पिता को छोड़ कर अलग हो जाते है। वे भूल जाते है कि अपने बड़ों के प्रति भी अपना कुछ कर्तव्य है। सांसारिक सुख के लोभ मे वे स्त्री बच्चों को ही सब कुछ मान बैठते है। यदि विचार से देखा जाय तो इसका कारण हमारी शिक्षा की कमी है। यदि हम कुटुम्ब के महत्व को समझते तो कभी भी उससे अपना सबंध विच्छेद नही करते। भारतीय कुटुम्ब आज आदर्श नही है। उसमे दो प्रकार के लोग पाये जाते हैं। एक तो वे जो सभी प्रकार से भारतीय हैं और पुराने

विचारों के समर्थक है। दूसरे वे जो नवीन विचारों से सहमत है और नई रहन-सहन के अनुयायी है। इन दोनों मे इतना अतर दिखाई पड़ता है कि बहुत थोड़े से कुटुम्ब सुखी है। इस कमी को दूर करने के लिये प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है कि निकट भविष्य मे हमारा कौटुम्बिक जीवन हरा भरा दिखाई पड़ेगा।

एक आदर्श कुटुम्ब के लिये बहुत सी चीजों का होना आवश्यक है। शिक्षा इन सब में प्रधान है। जो कुटुम्ब शिक्षित नहीं होगा वह सुखी नहीं रह सकता। आधुनिक युग विज्ञान का युग है। इससे विपरीत जीवन व्यतीत कर व्यक्ति प्रसन्न नही रह सकता। स्वयं कोई वस्तु अच्छी या बुरी नही हुआ करती है। प्रत्येक युग मे मनुष्य का दृष्टि कोण बदलता रहता है। एक ही वस्तु जो किसी जमाने मे बुरी ठहरायी गयी थी आज अच्छी मानी जाती है। मनुष्य को इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वह जमाने की प्रगति को पहचाने। तभी वह भले और बुरे को पहचान सकता है। जो बात व्यक्ति के लिए आवश्यक है वह कुटुम्ब के लिये भी है। जिस सहानुभूति और सहृदयता की आवश्यकता आज दिखाई पडती है उसकी प्राप्ति शिक्षा के बिना नही हो सकती। जब तक कुटुम्ब मे शाति नहीं है तब तक सारे समाज मे शान्ति नहीं रह सकती। कानून और शक्ति शरीर को दबा सकते हैं लेकिन हृदय पर उनका राज्य तब तक स्थापित न होगा जब तक उनके पीछे न्याय की भावना न होगी। शिक्षा से ही न्याय की आशा की जाती है। शिक्षित व्यक्ति अपने कर्तव्य का ध्यान रखता है। वह जिस भी कुटुम्ब मे रहेगा नियम का पालन और दूसरों के अधिकार की रक्षा करेगा। कौटुम्बिक जीवन मे सच्ची एकता तभी रह सकती है जब सभी व्यक्ति अपने अपने कर्तव्य का ध्यान रखे। शिक्षा के बिना उस कर्तव्य का

पालन नहीं हो सकता। शिक्षा के अतिरिक्त कुटुम्ब में परिश्रम की भावना एक समान होनी चाहिये। जिस कुटुम्ब मे अधिक सख्या काहिलों की होगी वह दुखी और गरीब होगा। किसी बड़े कुटुंब मे दो व्यक्ति बैठकर भले ही जीवन व्यतीत कर लें परन्तु यदि आधे से अधिक व्यक्ति औरों की ही कमाई पर निर्भर रहे तो इसका परिणाम कुटुम्ब और समाज दोनों के लिये बुरा होगा। यद्यपि कुटुम्ब मे कोई किसी को कार्य करने के लिये बाध्य नही करता फिर भी न्याय की दृष्टि से बैठकर भोजन करना उचित नहीं है। जिस कुटुंब में इस नियम का पालन नही होता वह कलह का घर बन जाता है। लोगों में अपनेपन का भाव आने लगता है। स्वार्थ और अपरिग्रह की बुराई पैदा हो जाती है। सारा कुटुम्ब दुखी होने लगता है।

शिक्षा और कार्य करने की शक्ति के अतिरिक्त एक तीसरी वस्तु भी कुटुम्ब के लिये अनिवार्य है। बड़ा से बड़ा कुटुम्ब धन के विना कुछ नहीं कर सकता। सम्पत्ति पारिवारिक जीवन का आधार है। कुटुम्ब के पास कम से कम इतनी सम्पत्ति जरूर होनी चाहिये जिससे सभी व्यक्तियों का भरण पोषण हो सके। उसे एक सुन्दर और सुडौल घर की आवश्यकता होती है। भोजन वस्त्र के अतिरिक्त बच्चों की शिक्षा के लिये कुछ धन की आवश्यकता पड़ती है। विशेष परिस्थितियों के लिये कुछ धन संग्रह- भी करना पड़ता है। जिस कुटुम्ब के लोग केवल खाने पीने मे लगे रहते है वे अकसर संकट मे पड़ जाया करते हैं। कुटुम्ब मे संयम से जीवन व्यतीत करना चाहिये। उसमे रहने वालों का कर्तव्य है कि वे सम्मिलित सपत्ति इतनी मात्रा मे अवश्य कमाये जिससे वे भोजन, वस्त्र तथा शिक्षा के अतिरिक्त कुछ बचा भी सकें। नित्य के जीवन मे सेवा और त्याग की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को पड़ती है। जो व्यक्ति कुटुम्ब मे इन गुणों को नही

सीखता। वह फिर इन्हें नहीं सीख पाता। व्यक्ति की कमजोरियों को छिपाने का जितना अवसर अपने कुटुम्ब मे मिलता है उतना शायद ही कहीं मिल सके। हर आदमी अपने कुटुम्बी जनों की छोटी से छोटी कमजोरियों को पहचानता और उन्हें दूर करने की कोशिश करता है। जो संस्कार कुटुम्ब में एक बार पड़ जाता है वह जीवन भर नहीं मिटता। अच्छा या बुरा जो भी स्वभाव बाल्यावस्था मे बन जाता है वह फिर बदल नहीं सकता।

कुटुम्ब सभी समुदायों मे श्रेष्ठ है। जो शिक्षा मनुष्य को कुटुंब में मिलती है वह बाहर सभव नही है। बच्चे की जितनी सेवा शुश्रूषा उसके कुटुम्ब मे हो सकती है उतनी और कही नहीं। मनुष्य के अन्दर जो बड़े बड़े विचार उत्पन्न होते है उनका बीजारोपण कुटुम्ब मे होता है। कुटुम्ब से अलग मनुष्य का जीवन सराय में ठहरे हुए यात्रियों की तरह है। कठिन से कठिन परिस्थति मे कुटुम्ब उसका सहायक होता है। जिस प्रकार बालक की असहाय अवस्था में उसके माता पिता उसका पालन-पोषण करते है उसी प्रकार वृद्धावस्था मे लड़के बच्चे उनकी देख भाल करते है। कुटुम्ब का जैसा सच्चा चित्र भारतीय ग्रामों मे दिखाई पड़ता है वैसा ससार के किसी कोने मे नहीं है। आर्थिक कठिनाई के कारण उनकी दशा आज शोचनीय है, फिर भी उनके अन्दर एक सच्चा प्रेम, सच्चा सठगन और सच्ची सहानुभूति है। एकता और समानता से उनका जीवन ओतप्रोत है। यद्यपि हमारा शहरी जीवन विदेशी जीवन से काफी प्रभावित है फिर भी ग्रामीण कुटुम्ब अभी तक सच्चे भारतीय हैं। व्यक्तिगत सपत्ति ग्रामों मे देखने को भी न मिलेगी। जितना ध्यान एक ग्रामीण को अपने कुटुम्ब का होता है उतना अपने निजी सुख का नहीं। उसे यह पूरा विश्वास है कि कुटुम्ब को छोड़ कर कोई दूसरा उसका सहायक नहीं हो सकता। लोग अपने

कुटुंब में एक दूसरे के लिये जेल यातनाएँ तक भोगने के लिये तैयार रहते हैं।

समुदायों की उत्पत्ति और विनाश (Origin and destruction of Associations)—जब कोई संगठन बनाया जाता है तो उसके लिये कठिन परिश्रम करना पड़ता है। बहुत से लोगों से मिलकर उसके फायदे को उन्हें समझाना पडता है। लेकिन सबसे पहले उसका उद्देश्य निश्चित हो जाना चाहिये। तभी हम लोगों को उसमे शामिल कर सकते है। एक आदमी अकेले कोई काम नही कर सकता। बहुत से लोगों को सगठित कर और उनका एक समुदाय (Association) बनाकर काम करने से आसानी होती है। अर्थात् समुदायों की उत्पत्ति कार्य की सुविधा के लिये होती है। समाज मे जितने तरह के कार्य होंगे उतने ही प्रकार के समुदाय बनेंगे। प्रतिवर्ष मालूम नही कितने ही नये नये समुदाय बनते ही रहते है। कोई बात किसी व्यक्ति के मन में आई, उसने लोगों से उसकी चर्चा की, और कुछ ही दिनों मे उसका एक संगठन बन गया। इसी सगठन का नाम समुदाय है। जो समाज जितना ही उन्नतिशील होता है उसमे उतने ही अधिक समुदाय होते हैं। अधिक से अधिक समुदायों का होना सभ्यता की निशानी है।

जो वस्तु पैदा होती है उसका नाश भी होता है। जो सगठन या समुदाय बनते है वे कभी न कभी नष्ट भी हो जाते है। समुदाय की उत्पत्ति किसी उद्देश्य से होती है। जब वह उद्देश्य पूरा हो जाता है तो उस समुदाय की कोई जरूरत नहीं रह जाती। फिर लोग उससे अलग हो जाते हैं और वह समुदाय नष्ट हो जाता है। यदि नये लोग उसी उद्देश्य से फिर उसमे आ जाते हैं तो वह समुदाय चलता रहता है और जल्दी नही टूटता। मान

लीजिये कि ५० आदमियों ने एक व्यायामशाला खोली। इसका नाम स्वास्थ्य समुदाय है। जब सब लोगों का स्वास्थ्य ठीक हो गया तो इसकी आवश्यकता जाती रही। फिर यह समुदाय तोड दिया जायगा। इसी तरह नये समुदाय बनते रहते हैं और पुराने टूटने जाते है। समुदायों के बनने और टूटने का सिल-सिला हमेशा जारी रहता है।

समुदायों से लाभ (Advantages of Associations)—बिना लाभ के कोई काम नही किया जाता। मनुष्य का यह स्वभाव है कि जिन कामों मे उसे लाभ दिखाई पडता है उन्हीं में वह हाथ डालता है। ये लाभ कई प्रकार के होते हैं। कुछ कामों से धन का लाभ होता है, कुछ से आनद की प्राप्ति होती है और कुछ से अपनी आत्मा को शाति मिलती है। जब हम किसी दीन दुखियों को चार पैसा देते है तो हमारी आत्मा को सतोष होता है। इसका नाम मानसिक लाभ है। यदि हमे स्वास्थ्य लाभ करना है तो किसी व्यायामशाला का सदस्य बनना होगा। यदि हम व्यापार करना चाहते है तो व्यापारियों के समु-दाय से अपना सबध जोडना होगा। यदि हम सदुपदेश सुनना चाहते हैं तो सत्सगति की तलाश मे किसी साधु समु-दाय मे जाना होगा। तात्पर्य यह है कि ससार मे समुदायों की संख्या और किस्मे अनत है। जिनमे हम चाहे प्रवेश कर सकते हैं। यह हमारी इच्छा पर है कि किस समुदाय से हम लाभ उठाये। विभिन्न इच्छायें होती है। जैसा जिसका स्वभाव है उसी के अनुकूल समुदायों से उसे लाभ पहुँच सकता है।

एक प्रश्न उठ सकता है कि जब हमे व्यापार, व्यायाम तथा अन्य कार्यों से लाभ होता है तो हमे उनको अकेले करना चाहिये, इनके सगठन अथवा समुदाय बनाने की क्या आवश्यकता है?

बात तो ठीक है। हम अकेले व्यायाम कर सकते हैं, किसी भी चीज का व्यापार कर सकते हैं, जिस सत्संग मे चाहें बैठ सकते है,इत्यादि इत्यादि। जब हम इन्हीं कार्यों को संगठित रूप से करते है तो हमारे कामों में अनेक सुविधाएँ मिलती है और हमारी शक्ति दूनी हो जाती है। हर आदमी स्कूल नही खोल सकता। इसलिये शिक्षा समुदाय आवश्यक है। व्यायाम करने की तरह तरह की सामग्रियाँ एक आदमी इकट्ठी नही कर सकता। जब बहुत से लोग इसके लिये प्रयत्न करते है तो व्यायामशाला अधिक मनोरंजक मालूम पड़ती है। व्यायाम करने वालों के सहयोग से प्रत्येक को नई नई जानकारियाँ होती है। एक दूसरे को देखकर हृदय मे उत्साह होता है। इसी प्रकार व्यापारी समुदाय में प्रवेश करने से व्यापार सम्बन्धी बहुत से नियमों का ज्ञान होता है। व्यापारी मडल एक दूसरे की सहायता करता है। संगठन से शक्ति बढ़ती है। समुदाय, सगठित होने के नाते, व्यक्ति को नाना प्रकार के लाभ पहुँचाते है।

समुदायों के भेद—(Kinds of Associations) ऊपर कहा गया है कि समुदाय अनेक है लेकिन इन सब को हम दो श्रेणियों मे रख सकते हैं। अर्थात् समुदाय दो प्रकार के होते है।

(१) अनिवार्य (Compulsory)।

(२) ऐच्छिक (Voluntary)।

अनिवार्य समुदाय वे है जिनका सदस्य बनना राज्य के सभी नागरिकों के लिये अनिवार्य होता है। यदि कोई नागरिक राज्य से अपने को अलग करना चाहे तो वह नहीं कर सकता। राज्य एक ऐसा समुदाय है जिससे सभी व्यक्तियों को लाभ पहुँचता है। यह समुदाय सभी समुदायों से बड़ा समझा जाता है। अन्य

समुदाय इसी के अंतर्गत कार्य करते हैं। इसकी इच्छा के विरुद्ध कोई समुदाय जीवित नहीं रह सकता। इसके बनाये हुए नियमों को अन्य समुदायों को मानना पड़ता है। राज्य के अतिरिक्त दूसरा अनिवार्य समुदाय कुटुम्ब है। यद्यपि यह सरकारी नियम नहीं है कि सभी लोग कुटुम्ब में ही रहें, फिर भी सुविधा की दृष्टि से अधिकतर लोग कुटुम्ब में ही रहते हैं। केवल साधु, सन्यासी कुटुम्ब से अपने को अलग रखते हैं। कुटुम्ब का सदस्य रहना मनुष्य का स्वभाव हो गया है। इसलिये इसकी गणना अनिवार्य समुदाय में होनी चाहिये। प्रकृति ने इसे अनिवार्य बना रखा है।

ऐच्छिक समुदाय वे है जिनका सदस्य बनना लोगों की इच्छा पर निर्भर है। चाहें तो वे इनके सदस्य बनें और न चाहें तो न बनें। ऐच्छिक समुदायों की संख्या गिनी नहीं जा सकती। कुछ प्रसिद्ध और अत्यंत उपयोगी समुदायों का जिक्र किया जा सकता है। शिक्षा समुदाय इन सब में आवश्यक है। व्यायामशाला वह समुदाय है जिसमें स्वास्थ्य ठीक करने के लिये लोग जाते हैं। जिसकी इच्छा नहीं होती वह नहीं जाता। धार्मिक समुदाय में वही जाता है जिसकी धर्म में रुचि है। जो व्यापार संबंधी जानकारी हासिल करना चाहता है वह व्यापारी समुदाय का सदस्य होगा। किसान अपनी उन्नति के लिये कृषक समुदाय बना सकते हैं। विदेशी लोग अपनी रक्षा तथा अधिकारों के लिये जातीय समुदाय (Racial Association) बना सकते हैं। इसी प्रकार विभिन्न उद्देश्य लेकर अनेक ऐच्छिक समुदाय बनाए जाते हैं। लोग अपनी इच्छानुसार उनके सदस्य बनते रहते हैं।

अब हम कुछ ऐसे समुदायों के विषय में लिखते हैं जिनका हाल जानना हमारे लिए आवश्यक है।

धार्मिक समुदाय (Religious Associations)—समाज के अधिकांश मनुष्यों के लिए धर्म की परम आवश्यकता होती है। यद्यपि समाज में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनके जीवन मे धर्म का कोई विशेष महत्व नहीं है, तथापि ऐसे मनुष्य अधिक हैं जो कोई न कोई धर्म अवश्य ही मानते हैं। धर्म एक बहुत प्रवल शक्ति है जिसका प्रभाव प्रत्येक समाज पर अधिक से अधिक पडा है। भारतवासियों की रुचि सदा से धर्म की ओर अधिक रही है इसी कारण हमारे देश में धार्मिक समुदायों (Religious Associations) की संख्या अधिक है। इनमें कुछ तो बहुत बड़े-बड़े है।

धार्मिक समुदाय (Religious Association) के लोग कई देशों में पाये जाते हैं तथा स्वतत्रता पूर्वक अपने धर्म का अनुसरण करते हैं, जैसे ईसाई-धर्म और बौद्ध-धर्म। ऐसे समुदाय (Associations) अन्तर्राष्ट्रीय (International) कहलाते हैं।

सांस्कृतिक समुदाय (Cultural Associations)—ऐसे समुदाय जो विशेष रूप से संस्कृति की उन्नति के लिए बने है उनको हम सांस्कृतिक समुदाय (Cultural Associations) कहते है। इन समुदायों ने शिक्षा, तथा कलाओं की अनेक प्रकार से उन्नति की है। इनमे स्कूल, कालेज एव विश्वविद्यालयों का प्रधान स्थान है। इनका उद्देश्य विज्ञान तथा अन्य कलाओं की शिक्षा देना है। ससार मे ऐसे भी समुदाय (Associations) बहुतेक हैं जिनका उद्देश्य केवल संस्कृति (Culture) का ही प्रचार करना है। इनके कारण साहित्य तथा कला की विशेष उन्नति हुई है। ससार मे धार्मिक समुदायों द्वारा भी संस्कृति का बहुत कुछ प्रचार हुआ है। इनके

द्वारा सुन्दर-सुन्दर मन्दिर, मसजिदें और गिर्जाघर बनाए गये है। चित्रकला, नाट्यकला तथा मूर्तियों की खुदाई का प्रचार भी इन्हीं के द्वारा हुआ है।

आर्थिक समुदाय (Economic Associations)—धार्मिक और सांस्कृतिक समुदायों की भाँति आर्थिक समुदायों (Economic Associations) की भी आवश्यकता पडती है। हमारी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सहयोग की जरूरत है। इस प्रकार के समुदायों के सदस्य विशेष कर वे ही लोग होते है जो किसी उद्योग मे लगे रहते है। उक्त आर्थिक समुदायों (Economic Associations) मे मजदूर सघ (Trade Unions), मालिकों के सघ (Employers, Union), व्यापार-मडल (Chamber of Commerce), सहकारी समितियाँ (Co-operative Societies), अध्यापक सघ (Teachers Union) आदि मुख्य है। इन आर्थिक समुदायों (Economic Associations) का मुख्य उद्देश्य अपने-अपने सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना है। संसार मे विविध समुदायों द्वारा समाज की बडी उन्नति हुई है।

मनोरंजन-समितियाँ (Recreational Associations)—हमारे जीवन में कुछ मनोरंजन अर्थात् दिल-बहलाव की भी बडी आवश्यकता है। जितना ही अधिक शारीरिक परिश्रम हम करे उतनी ही अधिक हमको मनोरंजन की आवश्यकता होती है। विना मनोरंजन के जीवन एक प्रकार से सूना सा लगता है। मनोरंजन अनेक प्रकार से हो सकता है, जैसे खेल कूद, नाटक, सिनेमा, क्लब आदि। सभ्य समाज मे मनोरंजन समितियों का एक मुख्य स्थान है। जितना बडा सभ्य समाज (Civilized society) होगा उतनी ही अधिक हमें उसमे

मनोरंजन की सामग्री मिलेगी। टूर्नामेन्ट्स (Tournaments) मेचज (matches) क्लब (Club), नाटक, सिनेमा आदि सभ्य समाज के मुख्य अंग हैं।

समुदायों का लक्षण (Characteristics of Associations)—प्रत्येक समुदाय अपनी एक विशेषता रखता है। इसीसे एक समुदाय दूसरे से भिन्न समझा जाता है। प्रत्येक समुदाय के कुछ न कुछ नियम होते है। जो भी उसमें प्रवेश करते हैं उन्हें उन नियमों का पालन करना पड़ता है। कुछ समुदायों में सदस्यों को फीस भी देनी पड़ती है। जितना ही छोटा बडा समुदाय होता है उतनी ही न्यूनाधिक फीस होती है। थोड़ी थोड़ी फ़ीस की रकम इकट्ठी होने से एक बड़ा कोष बन जाता है। इसीसे समुदाय का खर्च चलता है। सदस्यों के लाभ अथवा उपयोग के लिये चीजें खरीदी जाती है। आवश्यकता पड़ने पर कर्मचारियों को वेतन दिया जाता है तथा समुदाय को स्थाई बनाने के लिये कुछ धन बैंकों में जमा किया जाता है। जिस समुदाय में जितने ही अधिक सदस्य होते है उसकी आमदनी भी उतनी ही अधिक होती है।

जिस समुदाय का उद्देश्य जितना बड़ा होता है वह उतना ही व्यापक, सर्वप्रिय तथा स्थायी होता है। बिना धन के कोई समुदाय जीवित नहीं रह सकता। इसके सदस्यों को नियमों का पालन करना पड़ता है। कुछ समुदाय अपनी आय-व्यय का चिट्ठा प्रतिवर्ष जनता के सामने रखते है। कुछ अपना सालाना जलसा करते हैं। बहुत से समुदाय सदस्यों की संख्या बढ़ाने के लिये तरह तरह की बातों का प्रचार करते है। कुछ समुदाय सदस्यों को भर्ती करने मे आनाकानी भी करते हैं। उनका प्रवेश नियम बहुत सख्त होता है। कुछ समुदाय में लोग इसी-

लिये जाते हैं कि वहाँ उनका सम्मान बढ़ता है। कुछ समुदायों में जाने से मान हानि होती है इसलिये व्यक्ति को सोच विचार कर किसी समुदाय का सदस्य बनना चाहिये।

अध्याय ५

नागरिक स्वतंत्रता

Civic Liberty

स्वतन्त्रता (Liberty)—स्वतन्त्रता गुलामी का विपरीत शब्द है। जो गुलाम नही है वह स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि मनुष्य को इस बात का पूरा अवसर मिले कि वह आत्मोन्नति कर सके। जिस हद तक उसे इसकी स्वतन्त्रता दी गयी है वहाँ तक वह स्वतन्त्र है। प्राचीन काल में स्वतन्त्रता से तात्पर्य यह था कि अत्याचारी राजाओं से रक्षा हो। राजा प्रजा पर इतना अत्याचार करते थे कि उन्हे रोकने का अधिकार ही एक बहुत बड़ी स्वतन्त्रता समझी जाती थी। किन्तु आधुनिक युग मे, जिसे प्रजातन्त्र वाद का युग कहते हैं, इस प्रकार के अत्याचारी राजा नही रहे। आज स्वतन्त्रता का एक दूसरा अर्थ लगाया जाता है। प्रजातन्त्रवाद (Democracy) और स्वतन्त्रता दोनों एक ही सिद्धान्त के दो पहलू है। नागरिकों को इस बात की स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वे भाषण दे सकें, मीटिंग कर सकें, सामाजिक सगठन बनावे, वाद-विवाद करें तथा शासन प्रबन्ध में टीका-टिप्पणी कर सकें। प्रेस को भी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। व्यक्तित्व का विकास इन्ही स्वतन्त्रताओं द्वारा होता है। टीका-टिप्पणी सत्य

की खोज का सबसे बड़ा साधन है। जब तक सत्य की खोज न होगी तब तक मनुष्य का उद्देश्य पूरा न होगा। उन्नति का तात्पर्य स्वतन्त्र विकास से है। स्वतन्त्र विकास स्वाभाविक विकास को कहते है। इसीलिये स्वतन्त्रता एक स्वाभाविक अधिकार है। मनुष्य को इससे वंचित करना उसके स्वाभाविक विकास को रोकना है। स्वतन्त्रता के कई प्रकार है। स्वाभाविक स्वतन्त्रता, सामाजिक स्वतन्त्रता, राजनीतिक स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता। इन पर अलग अलग विचार किया जायगा।

स्वाभाविक स्वतंत्रता (Natural Liberty,— फ्रांस का प्रसिद्ध विद्वान् रूसो लिखता है:—"मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है, और सब जगह परतन्त्रता के जाल मे जकड़ा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य अपने को एक दूसरे का स्वामी समझता है परन्तु उसकी गुलामी उसके नौकरों से भी बढ कर है।" जब मनुष्य का जन्म स्वतंत्र होता है तो वह स्वतंत्र रहने का अधिकारी है। यह मनुष्य की कमजोरी है जो सामाजिक बंधनों मे अपने आपको बाध देता है। शरीर और विचार दोनों स्वतंत्र है। शरीर को बांधा जा सकता है परन्तु विचारों की गुलामी संभव नही है। एक विद्वान का कहना है "विचार पूर्ण स्वतंत्र है।" राज्य मे नागरिक अपनी उन्नति के लिये सब कुछ कर सकता है। विचारों को दबाने का जितना ही प्रयत्न किया जाता है उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ती है। जिन जिन चीज़ों से नागरिक की उन्नति हो सकती है वे सभी स्वाभाविक हैं और उन्हे प्राप्त करने का अधिकार स्वाभाविक कहलाता है। खाने, पीने, पहनने, बोलने, चलने, फिरने, सोचने आदि क्रियाओं के बिना मनुष्य जीवित नही रह सकता। अतएव इनकी प्राप्ति मे जिन जिन अधिकारों की जरूरत हो वे सब स्वाभाविक है।

सामाजिक स्वतंत्रता (Social Liberty)— जब तक समाज की रचना नहीं हुई थी तब तक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार खाता, पीता, घूमता तथा विचारता था। उसके ऊपर किसी प्रकार के बन्धन नहीं थे। यदि कोई उसे कष्ट पहुँचाता तो अपनी शारीरिक शक्ति से वह उसका मुकाबिला करता था। ऐसी दशा मे कमजोर व्यक्ति स्वतंत्र नहीं रह सकता था। इसीलिये समाज की रचना हुई कि प्रत्येक मनुष्य समान रूप से स्वतंत्रता से लाभ उठाए। बहुत से सामाजिक नियम बनाकर मनुष्य को चेतावनी दी गई कि वह एक दूसरे की स्वतत्रता में बाधा न डाले। यदि समाज मे रहना है तो सबकी भलाई का ध्यान रखना होगा। समाज मे मनुष्य वहीं तक स्वतत्र है जहाँ तक वह औरों की स्वतत्रता मे बाधा नहीं पहुँचाता। उसे बहुत से सामाजिक नियमों का पालन करना पडता है। सामाजिक स्वतत्रता का तात्पर्य है कि मनुष्य को सच्ची स्वतत्रता समाज मे मिलती है। सभ्यता और स्वतत्रता दोनों मिली हैं। यदि मनुष्य सभ्य बनना चाहता है तो वह समाज मे स्वतत्रता को स्थान दे। समाज से अलग कोई स्वतत्रता है तो वह जगली और असभ्य है। इसमे थोडे गुण भी हों तब भी समाज को उनसे कोई लाभ नहीं है।

राजनीतिक स्वतंत्रता (Political Liberty)— स्वतत्रता का तीसरा क्षेत्र राजनीति है। इसका तात्पर्य 'स्वतत्र देश' अथवा 'स्वतत्र सरकार' से है। जिस राज्य मे प्रजा को यह अधिकार है कि वह शासन में हाथ बटावे वहाँ राजनीतिक स्वतन्त्रता है। जनता स्वय यह निश्चित करती है कि उसका शासन प्रबध कैसे हो। साम्राज्यवाद राजनीतिक स्वतत्रता का शत्रु है। एक देश को कोई अधिकार नहीं है कि किसी दूसरे

देश को गुलाम बनावे। इसी तरह राज्य व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सकता। शक्ति के आधार पर निर्माण किया हुआ राज्य चिरस्थायी नहीं होता। स्वतंत्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। अब्रहम लिंकन ने प्रजातन्त्रवाद की जो परिभाषा की है कि "सरकार प्रजा की वस्तु है। प्रजा उसे अपनी भलाई के लिये चलावे," सब को मान्य है। सरकार और व्यक्ति की स्वतन्त्रता का युद्ध इतिहास का सब से बड़ा अध्याय है। प्राचीन तथा मध्य काल तक यह युद्ध चलता रहा कि राजसत्ता का क्या तात्पर्य है और राजा के क्या-क्या अधिकार हैं। आज भी प्रजा की सम्पूर्ण माँगें पूरी नही हो सकीं। अभी यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है कि राजसत्ता प्रजा की शक्ति है और वह उसे घटाने बढ़ाने मे स्वतन्त्र है।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता (National Liberty)—जो देश स्वतंत्र नहीं है वह राष्ट्र नहीं कहला सकता। भारतवर्ष एक राष्ट्र है। सम्राज्यवाद और राष्ट्रीयता एक दूसरे के विरोधी सिद्धान्त है। जैसे व्यक्ति को राज्य मे स्वतंत्रता चाहिये उसी प्रकार देश को स्वतंत्रता की आवश्यकता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अधिक आवश्यक है। कोई देश गुलाम रह कर अपनी उन्नति नही कर सकता। जो देश परतंत्र है वे गरीब और असन्तुष्ट रहते है। उनके अन्दर जीवन का अभाव होता है। इसलिये राज्य के निवासियों का कर्तव्य है कि न वे किसी को गुलाम बनावे और न स्वय गुलाम रहे। नैतिक दृष्टि से दोनों ही बुरे है। इतिहास मे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की कहानियाँ भरी पड़ी है। इसके लिये देशवासियों ने अपना तन और धन दोनों अर्पण किया है। जिस राष्ट्र को इस स्वतन्त्रता का मूल्य मालूम है वह ऊँची कौम का शासन

पसन्द नही कर सकता। स्वतंत्र राष्ट्र मे व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण किया जा सकता है। इसलिये शासन विधान बहुत ही सोच विचार कर बनना चाहिये।

स्वतंत्रता की आवश्यकता (Necessity of Liberty)—स्वतन्त्रता मानव जीवन का तत्त्व है, जिसे खोकर वह मनुष्य नही रह जाता। जिस समय मनुष्य जन्म लेता है उस समय उसकी जीभ मे कोई कुंजी नही लगी रहती और न उसके हाथ-पैर बधे होते है। यह बात मनुष्यत्व के विरुद्ध है कि उसकी जीभ मे ताला लगा दिया जाय और उसकी गति रोक दी जाय। ऐसा करने से मनुष्य पशु और पक्षियों से भी नीचे गिर जाता है। मछली पानी मे अपनी इच्छानुसार घूमती है, पक्षि जहाँ चाहे उड सकता है, फिर मनुष्य को आने जाने मे रुकावट क्यों हो? स्वतन्त्र मनुष्य अपने सम्मान की रक्षा करता है, वही सत्य बोलता है और उसी को मनुष्यत्व की प्राप्ति होती है। पूर्ण स्वतन्त्रता वह भूमि है जिसमे व्यक्तिगत बीज अपने आप उगता है और बढकर ज्ञान, आनन्द, प्रेम और सच्चरित्रता आदि फल लाता है। उसी के मुख से यह वाक्य निकल सकता है कि "मै विचार करता हूँ, मै महसूस करता हूँ, और मेरी यह इच्छा है।" स्वतन्त्रता के बिना मनुष्य मशीन की तरह है जो दूसरो के हाथ की कठपुतली है। मनुष्य की आत्मा मे यह ध्वनि है कि स्वतंत्रता मेरा अधिकार है। मै कानून का वही तक आदर करता हूँ जहाँ तक वह मेरी उन्नति करती है।" स्वतन्त्रता का यह ऊँचा आदर्श समानता के बिना पूरा नही हो सकता। स्वतन्त्रता उन्नति की जननी है। फ्रांस का निवासी निकोलस लिखता है; "मनुष्य स्वभाव से स्वतन्त्र और समान है। किसी सत्ता या नियम का श्रोत जनता से आरम्भ होता है।"

जानस्टुअर्टमिल अपनी "स्वतन्त्रता" नामक पुस्तक मे

लिखता है, "मनुष्य अपनी राय कायम करने के लिए स्वतन्त्र है। उसे अपनी राय जाहिर करने का पूरा अधिकार है।" प्रश्न यह है कि क्या वह अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता है? यदि कार्य रने का अधिकार नहीं है तो केवल विचार से क्या लाभ? मिल का यह कहना है कि "कार्य करने में मनुष्य को वहीं रुकावट डाली जाती है जहाँ वह उससे दूसरों को हानि पहुँचाता है।" कोई अपने कामों से दूसरे को हानि न पहुँचाये तो वह कार्य करने के लिये स्वतन्त्र है। यह बात न्याय संगत है कि दूसरों को हानि पहुँचाना पाप है। राज्य की ओर से मनुष्य के कामों पर प्रतिबध इसलिये है कि एक के काम से दूसरे को हानि न पहुँचे। मनुष्य वही तक स्वतन्त्र है जहाँ तक वह दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं पहुँचाता। जो वृक्ष अपनी इच्छानुसार बढ़ता है उसका विस्तार अधिक होता है और उसकी नींव दृढ़ होती है। वही हालत मनुष्य की भी है। दूसरों की इच्छा पर चलने वाला अपने व्यक्तित्व की रक्षा नहीं कर सकता। उसकी शक्तियाँ तभी विकसित होती है जब वह स्वतन्त्रता-पूर्वक विचार करता है और उसी के अनुसार चलता है। पग पग पर रोकने से मनुष्य की तीव्र बुद्धि कुंठित हो जाता है। स्वतन्त्र विचारों से चरित्र बल की नींव पड़ती है। पशु की तरह मनुष्य बाँधा नहीं जा सकता। उसका मूल्य तभी तक है जब तक वह स्वतन्त्र है।

आवश्यकता अनुसधान की जननी है। स्वतन्त्रता में अपनी आवश्यकताओं को हम समझ सकते हैं। हमारी आवश्यकताये भिन्न भिन्न हैं। बाहरी नियम इसे निश्चित नही कर सकते। अपनी इच्छानुसार आवश्यकता की पूर्ति कर मनुष्य संतोष का अधिक अनुभव करता है। जितने भी आविष्कार दिखलाई पड़ते हैं सभी स्वतन्त्र विचारों के फल है। ससार मे जितनी नवीनता

हमे दिखलाई पड़ती है वह सब स्वतन्त्र मस्तिष्क की उत्पत्ति है। ज्ञान की विभिन्न शाखाओं मे जो नये नये सिद्धान्त हमें मिलते हैं वे स्वतत्र बुद्धि के परिणाम है। यदि स्वतन्त्रता न हो तो नवीनता नहीं रह सकती। यदि राज्य की ओर से यह कानून बना दिया जाय कि सब लोग अपना घर एक प्रकार का बनावें तो इसका परिणाम क्या होगा? वास्तु कला विशारद नये नये नकशे बनाना बन्द कर देगे और कुछ दिनों मे गृह निर्माण कला का विनाश हो जायगा।

राज्य और स्वतंत्रता (State and Liberty)—राज्य नागरिक की स्वतत्रता में बाधक है।" जो ऐसा कहते हैं वे न राज्य को समझते है और न स्वतंत्रता को। उनकी समझ मे स्वतत्रता का तात्पर्य जगली स्वतत्रता से है। जो जिसे चाहे मार दे और जितना धन चाहे छीन ले तो हम उसे स्वतंत्र तो जरूर कहेंगे, परन्तु उसकी स्वतत्रता को सराहना नहीं करेंगे। यदि ऐसी स्वतन्त्रता सब को दे दी जाय तो दुनिया मे आतताइयों का बोलबाला होगा और कार्य करना असभव हो जायगा। लूटमार, अत्याचार होने लगेंगे। सभ्यता और नियम का नामोनिशान दुनिया से मिट जायगा। इसी को रोकने और शांति की स्थापना कर न्याय की रक्षा के लिये राज्य की उत्पत्ति हुई है। राज्य मनुष्य की स्वतत्रता मे बाधक नहीं है। राजकीय नियम उसकी जगली स्वतत्रता को बुरा ठहराते है। वे मनुष्य की शक्ति को सगठित कर अच्छे कामों की ओर अग्रसर करते है। कानून उसे बधन मालूम पड़ते हैं परन्तु ये उसकी रक्षा के लिये हैं और उसके विकास मे सहायक होते हैं। कहा जाता है कि "कानूनों की इतनी भरमार है कि व्यक्ति को वे भार मालूम पड़ते हैं। विभिन्न सगठनों का जोर इतना बढ़ रहा है कि व्यक्ति

की उसमें कोई हस्ती नही है। सामाजिक संगठन मे वह मशीन बन गया है।" मैं इससे सहमत नहीं हूँ। कानूनों की अधिकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से कोई सम्बन्ध नही है। कानून हमारी कठिनाइयों को दूर करने के लिये बनाये जाते है। हमे उनकी आवश्यकता है। स्वार्थ की दृष्टि से वे भले ही बुरे लगे, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर हम उनका प्रयोग करते है।

सामाजिक सगठन हमारी विभिन्न मांगों की पूर्ति करते है। जो सस्थाओं का विखरा हुआ जाल दिखलाई पड़ रहा है उसको हमी बैठकर बुनते है। स्कूल में पढ़ने के लिये जब कोई बच्चा भेजा जाता है तो शिक्षा उसे भार मालूम पड़ती है। स्कूल को वह जेल समझता है। फिर भी शिक्षा को कोई बधन नहीं कह सकता। इसी प्रकार और भी सस्थाएँ बंधन नही हैं। उनमे रह कर हम अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकते है। वे हमारी स्वतंत्रता मे वाधक नही है। राज्य और समाज हमारी उन्नति मे सहायक है। वे वाधक तभी सिद्ध होते है जब हम अपनी उन्नति का मार्ग छोड कर अवनति के पथ पर चलने लगते है। राज्य मे चोरी, व्यभिचार, अन्याय, अपहरण, प्रतिकार आदि की स्वतन्त्रता किसी को भी नही है। किन्तु इससे समाज को हानि नही होती। यह सभी मानेगे कि ऐसी स्वतन्त्रता की आवश्यकता नही है।

कभी कभी राज्य मनुष्य की स्वतन्त्रता मे वाधक होता है। भय और स्वार्थ वश उस समय उसे कोई बुरा नहीं ठहराता किन्तु न्याय की दृष्टि से हम उसको बुरा कह सकते है। इसका तात्पर्य यह नही है कि इस रुकावट के कारण राज्य बुरी चीज है। चन्द अवगुणों के कारण हम सैकड़ों गुणों का वहिष्कार नही कर सकते। राज्य जहाँ वाधक सिद्ध हुआ है वहाँ हमारे लिए आवश्यक भी है। हमे देखना चाहिये कि किस प्रकार राज्य

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता मे बाधक होता है और उससे क्या हानि होती है। यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात अपने स्वतंत्र विचारों के कारण फाँसी पर चढ़ा दिया गया। बहुत सभव है कि आज उसके विचारों से दुनिया को लाभ पहुँचता। उसे मृत्यु दड देकर सरकार ने बुरा किया। प्रत्येक युग मे कितने ही मनुष्य अपने विचारो को स्पष्ट करने से वंचित कर दिए जाते है। उस समय उन विचारों से लाभ भले ही न हो परन्तु भविष्य के लोग उससे लाभ उठा सकते है। इटली का महापुरुष गेलिलिओ यही कहने पर कि" जमीन गोल है" अपने प्राण से हाथ धो बैठा। उस समय उसके कथन मे सचाई भले ही न मालूम पडी हो, परन्तु बात बिलकुल ठीक थी। सरकार कभी-कभी अखबारो पर प्रतिबध लगाकर लेखन स्वतन्त्रता को छीन लेती है। इससे कितनी ही सच्ची बाते छिपी रह जाती है। बहुत सी राय को सरकार गलत ठहरा देती है और उसे जाहिर करने से व्यक्ति को रोक देती है। यदि सब नहा तो उसका अश ठीक हो सकता है।

कानून और स्वतंत्रता (Law and Liberty)—पैस्कल का कहना है," पूर्ण स्वतन्त्रता मनुष्य के लिए घातक है। इसीलिए कानून का प्रतिबन्ध लगाकर उसे रोका गया है।" प्रश्न यह है कि स्वतन्त्रता और रोक ये दोनों कैसे रह सकते है। या तो मनुष्य को रोका ही जाय या उसे स्वतन्त्र ही किया जाय। इसी प्रकार के विचारक कानून को एक बन्धन समझते है। उनका कहना है कि "कानून का बन्धन स्वतन्त्रता का उसी प्रकार अपहरण करता है जिस प्रकार थोड़ा सा जहर मनुष्य का प्राण ले लेता है। कानून और स्वतन्त्रता दोनों साथ साथ नही चल सकते। कानून एक दबाव है और स्वतन्त्रता का सम्बन्ध विनय

और प्रार्थना से है। कानून ने आज तक एक भी महापुरुष पैदा नहीं किया। परन्तु स्वतन्त्रता ने अनेक महापुरुषों को उत्पन्न किया है। रोशनी और हवा की तरह स्वतन्त्रता पर रोक नहीं लगाया जा सकता।" व्यावहारिक दृष्टि से कोई भी इस विचार से सहमत नहीं हो सकते। हीगल का कहना है, "कानून के पालन मे ही स्वतन्त्रता है।" रोम का विद्वान सिसरो लिखता है, "स्वतन्त्रता कार्य करने की वह शक्ति है जो कानून द्वारा प्राप्त होती है।" वास्तव में कानून की यह व्याख्या ठीक है और तभी हम उसमें स्वतन्त्रता का अनुभव कर सकते हैं। उस स्वतन्त्रता से क्या लाभ जो सार्वभौम नहीं बनाई जा सकती। कानून हमारे विचारों का प्रतिबिंब है। वे हमारे गुणों का समर्थन और बुराइयों का विरोध करते है। रैम्जे म्योर ने लिखा है, "कानून और स्वतन्त्रता पाश्चात्य सभ्यता के आधार है।" दोनों का सिद्धान्त मिला हुआ है। कानून से स्वतन्त्रता की रक्षा होती है और स्वतंत्र मनुष्य ही कानून का पालन कर सकता है।

क्या मनुष्य स्वतंत्र है ? (How far man is free)—ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है कि मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र नहीं है। वह अपने कर्त्तव्यों से बधा हुआ है। जहाँ अधिकार उसे स्वतन्त्रता प्रदान करते है, वहाँ कर्तव्य बधन मे जकड़ देते हैं। अधिकार और कर्तव्य के चक्कर मे मनुष्य पड़ा रहता है। पूर्ण स्वतन्त्रता, जो जगली स्वतन्त्रता से भिन्न है, एक स्वप्न है जो इस ससार मे पूरा नही हो सकता। राजनीतिक तथा सामाजिक बधन मनुष्य के मस्तिष्क को एक विशेष मार्ग पर ले चलते है। सारा वायुमडल ऐसा बना दिया जाता है कि एक विशेष दृष्टिकोण से मनुष्य चीजों को देखने लगता है। जो अपना दृष्टिकोण बदल कर कोई नई बात कहता है उसे

सरकार और समाज रोकते है। वह अपराधी और पागल कहा जाता है। महात्मा गाँधी जो ससार मे सब से बडे जीवित महा-पुरुष थे, अपने विचारों को कार्य रूप मे परिणत करने मे असमर्थ थे। इसके दो कारण है। सरकार उन्हें इसकी पूरी स्वतन्त्रता नहीं देती और समाज भी उनके आदर्शों को नहीं समझ पाता। फिर कैसे कहा जाय कि मनुष्य स्वतन्त्र है। सामाजिक परिपाटियाँ राजनीतिक वातावरण और धार्मिक कठिनाइयाँ उसकी स्वतन्त्र विचार धारा मे चट्टान की तरह बाधक होते है। आज से दस बीस वर्ष पहले कोई ब्राह्मण यह नहीं कह सकता था कि हरिजनों का छुआ भोजन करना चाहिये। ब्राह्मण जाति उसे इसकी स्वतन्त्रता नही दे सकती थी।

मनुष्य वही तक स्वतन्त्र है जहाँ तक वह परिपाटियों का गुलाम नही है। सरकारी कानून उसकी स्वतन्त्रता मे उतनी बाधा नही डालते जितने सामाजिक बधन। वह अपने आपको जितना इनसे ऊपर उठा पाता है उसी दर्जे तक वह स्वतन्त्र है। रेल किसी को यात्रा करने से नही रोकती परन्तु आर्थिक कठिनाई और धार्मिक रूढि अनेक व्यक्तियो को इससे वचित कर देती है। मनुष्य की परिस्थित भी उसकी स्वतन्त्रता मे बाधक होती है। रोटी की चिन्ता मे पड़ा हुआ मनुष्य बडी बडी बातो को सोच नही सकता। मानसिक कमजोरियाँ सब से बडी बाधाये है। जो शराबी है वह शराब की बुराई को नहीं सुन सकता। उसकी कमजोरी इस बात की स्वतन्त्रता नही देती कि वह आत्म उन्नति कर सके। शराब की दूकान उसके पास रहनी चाहिए। शारीरिक त्रुटियो के कारण मनुष्य अपनी स्वतन्त्र इच्छाओ से वचित हो जाता है। जिसकी टाँग टूटी हुई है वह बद्रीनाथ की यात्रा नही कर सकता, चाहे उसकी इच्छा कितनी ही प्रबल क्यों न हो। अशिक्षित

मनुष्य इच्छा रखते हुए भी कोई ग्रन्थ नही पढ सकता। उसकी स्वतन्त्रता चारों ओर से घिरी हुई है। परन्तु उसकी शक्ति अनन्त है। अपनी परिस्थिति से ऊपर उठकर यदि वह अपने आपको पहचान ले तो काफी अंश तक वह स्वतन्त्र हो सकता है

अध्याय ६

नागरिकता का विकास

Development of Citizenship

नागरिक भावना (Civic Sense)—माता पिता बच्चों को स्कूलों मे शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजते है। इस शिक्षा से उनके दो उद्देश्य होते है। एक तो यह कि बच्चों को लिखने पढ़ने का ज्ञान होगा और वे समाज मे बुद्धिमान तथा विद्वान् बनकर जीवन व्यतीत करेंगे। लेकिन इनसे भी बढ़कर उनका एक दूसरा उद्देश्य होता है। वे यह भी चाहते है कि बच्चे अच्छी आदते सीखे, एक दूसरे के साथ मिलजुल कर रहे और सबके साथ ऐसा व्यवहार करे कि कोई इन्हे बुरा न कहे। शिक्षा का यह दूसरा पहलू उनके लिये बहुत ही आवश्यक होता है। यदि बच्चे को पढने आ गया और वह अपने दर्जे मे प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी मे पास होने लगा तो यही माता पिता के सन्तोष के लिये काफी नही है। इतना होते हुये भी यदि बच्चे मे झूठ बोलने की आदत है, वह सबसे लड़ता रहता है और माता पिता को हर रोज दो चार उलाहने सुनने पड़ते है तो उनकी नजरो मे उसकी पढाई का कोई मूल्य नही है। बच्चे के अभिभावक उसके आचार विचार तथा व्यवहार कुशल

जीवन को देखकर जितना प्रसन्न होते है उतना किसी और बात से कदापि नही होते। तात्पर्य यह है कि लड़कपन से ही सबके अन्दर नागरिक भावना का श्रीगणेश करा दिया जाता है। यदि इसके विकास की उत्तम सामग्री मिल गई तब तो बच्चे का जीवन सुधर जाता है और वह समाज के लिये एक उपयोगी अग सिद्ध होता है, अन्यथा भारस्वरूप औरो को जीवन भर सकट पहुँचाता है।

कोई व्यक्ति अपने बच्चे को गन्दी आदत नही सिखलाता। वह इस बात का ध्यान रखता है कि बच्चा अच्छी सगति मे रहे तथा ऊँचे विचारो को ग्रहण करे। समाज मे उसके कार्यो की ख्याति हो और उसका जीवन शुद्ध तथा लोक-हितैषी हो। परिस्थिति का दास होकर मनुष्य सब कुछ कर सकता है। परन्तु उसके अन्दर यह भाव छिपा हुआ है कि उसके जीवन से औरो को लाभ पहुँचे तथा समाज मे उसके यश की ख्याति हो। इसीलिये अपने बच्चों को भी इसी मार्ग पर लाना चाहता है। अनेक प्रकार के सामाजिक बन्धनो तथा व्यक्तिगत कमजोरियो के कारण सबको इस दिशा मे सफलता नही मिलती, फिर भी लोग अपने उद्योग मे कमी नही करते। किसी को भी यह लालसा नही होती कि उसका लडका बुरे मार्ग का अनुकरण करे। समाज को जान बूझकर कोई हानि नही पहुँचाता। जैसे सर्प अनायास किसी को नही काटता और बिना छेडछाड किये हिंसक पशु कभी किसी को हानि नही पहुंचाते, उसी प्रकार मनुष्य भी अपनी इच्छा से किसी का बुरा नही करता। वह किसी ऐसी परिस्थिति मे डाल दिया जाता है कि वहाँ उसे सब कुछ करना पडता है। समाज मे जितने भी अपराध होते है उनकी तह मे यही परिस्थिति काम करती है। तुलसीदास जी भी अपनी रामायण मे लिखते है:—

काल सुभाव करम बरिआई।
भलेहु प्रकृति बस चूक भलाई॥

इस सूक्ष्म व्याख्या से स्पष्ट है कि नागरिकता का बीज आरम्भ से ही हमारे अन्दर बो दिया जाता है। उसके विकास की अधिक अधिक सामग्री देने की कोशिश की जाती है। परिस्थिति को पाकर किसी में यह भावना बढ जाती है और किसी मे सूख जाती है। अर्थात् कुछ व्यक्तियों से सामाजिक कल्याण हो जाता है और कुछ से कल्याण के बदले हानि होती है।

नागरिकता के मूल तत्त्व (Fundamentals of Citizenship)—जिस परिस्थिति को पाकर नागरिकता का विकास होता है उसके मूल मे कुछ ऐसे तत्व मौजूद है जिन्हे हम छोड नहीं सकते। जैसा वातावरण होगा वैसे ही हमारे विचार होंगे। यदि हम अच्छे लोगों की संगति मे उठते-बैठते, खाते-पीते तथा कार्य करते है तो हमारे विचार अच्छे होंगे। बुरों की संगति से हमारी आदते अवश्य ही खराब होंगी जिन तत्वों को पाकर एक व्यक्ति समाज मे कुशल नागरिक बन सकता है उनमे पहला स्थान स्वतन्त्रता (Liberty) का है जब तक व्यक्ति सोचने, विचारने, आने-जाने तथा कार्य करने के लिये स्वतन्त्र नहीं है तब तक उसकी बुद्धि पूरी तरह काय नहीं कर सकती। दूसरों की बुद्धि से कार्य करते रहने मे मनुष्य मशीन का पुर्जा बन जाता है। उसके भीतर का उत्साह और रचनात्मक विचार सब मर जाते है। बच्चों के जीवन मे अकसर देखा जाता है कि उनकी उन्नति अवनति मे इस भावना का बहुत बडा प्रभाव पड़ता है। माता पिता बच्चे की छोटी छोटी बातों मे भी दखल देते रहें और उसे अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से कुछ कार्य करने का अवसर न मिला तो उसका विकास रुक जाता है। लेकिन जो बच्चे आरम्भ से ही स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करने

के आदी होते है वे आगे चलकर बड़े बडे कार्य कर बैठते हैं। स्वतन्त्रता मे ही जीवन के सही अनुभव होते है। जब मनुष्य अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कार्य करता है तो उससे अनेक गलतियाँ होती है। इन्ही गलतियों से उसे नसीहत मिलती है और वह आगे के लिये सचेत हो जाता है। स्वतंत्रता मे मनुष्य को सब प्रकार का सुख मिलता है। किसी कवि ने कहा है:—

पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रहत शुक वन विषें, कनक पींजरे दीन॥

स्वतन्त्रता मे एक बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये। जब हम सब कुछ करने के लिये स्वतंत्र है तो हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम जिसे चाहें हानि पहुँचाये और अपने कार्यों से दूसरों के दुख का कारण बन जायँ। ऐसी स्वतन्त्रता समाज के लिये घातक होगी। यदि स्वतत्रता मे सयम, नियम अथवा कर्तव्य-पालन की भावना नही है तो वह जगली स्वतत्रता है जिसका प्रयोग आज भी जगल के जानवर करते है। परन्तु सभ्य समाज मे उसकी चलन नही हो सकती। स्वतत्र रह कर भी हम मनमाना काम नही कर सकते। जितनी स्वतत्रता हमे प्राप्त है उतनी औरों को भी होनी चाहिये। दूसरों को भी इसमे वही आनन्द प्राप्त होता है जो हमे मिलता है। ऐसी दशा मे किसी को दूसरे की स्वतंत्रता मे बाधा डालने का क्या अधिकार है?

नागरिकता का दूसरा तत्व समानता (Equality) है। समाज मे जो विषमता दिखाई पडती है वह एक बहुत बड़ा दोष है। क्या कारण है कि एक ओर तो बड़े बड़े धनीमानी लोग सुख विलास की जिन्दगी बितावें और दूसरी ओर गरीब बिचारे दाने दाने को तरसते रहें। यह सामाजिक अन्याय नही

तो और क्या है। यदि कहा जाय कि यह ईश्वर की देन है और प्रकृति मे विषमता पाई जाती है तो यह सर्वदा मिथ्या है। समाज-निर्माण मे बहुत कुछ हाथ मनुष्य का है। जितने भी सामाजिक सगठन दिखाई पड़ रहे हैं उन्हें बनाने बिगाडने वाला मनुष्य ही है। सरकार स्वय उसी की बनाई हुई चीज है। यह बात दूसरी है कि ये चीजें दो चार मनुष्यो द्वारा नहीं बनाई गई है। हजारो लाखों आदमियों की बुद्धि के मेल से इनका निर्माण हुआ है। इन्हें बनाने बिगाड़ने मे काफी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। लोगों के विचारो मे भिन्नता होती है। प्रत्येक बात के कुछ न कुछ विरोधी होते हैं। सामाजिक कार्यो के निर्माण मे यह मतभेद और भी विषम रूप धारण कर लेता है। जब कोई परिपाटी समाज मे एक बार चल पड़ती है तो इसमे खराबियाँ रहते हुए भी इसे हटाने मे लोगों को आपत्तियाँ होती है। विषमता भी इसी प्रकार की एक परिपाटी है जो सदियों से समाज मे चली आ रही है।

इस विषमता के रहते हुए समाज का एक बड़ा अश दुखी तथा चिन्तित रहता है। किसी भी अच्छे कार्य मे उसकी शक्ति का सहयोग नही मिलता। चोरी, डाके, ठगी, घूसखोरी आदि बुराइयों का आश्रय लेकर गरीब वर्ग अपनी रोटी कमाता है। उसीकी देखा-देखी सम्पन्न व्यक्ति भी इन बुराइयो के दास हो जाते है। इसीलिये एक सभ्य समाज के निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि नागरिको के जीवन मे अधिक से अधिक समानता हो। उनकी आर्थिक दशा समान हो। उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध एक सा हो। सरकार की दृष्टि मे सभी नागरिक एक हों। ऐसी परिस्थिति कभी उपस्थित न हो जिससे किसी कुटुम्ब अथवा वर्ग विशेष को अनावश्यक कठिनाइयो मे आ जाना पडे। समानता के रहने से समाज से अनेक प्रकार की

बुराइयाँ जाती रहेगी। ईर्ष्या, द्वेष, कलह, अहङ्कार, आदि व्यर्थ के भाव न रहेंगे। इसके विपरीत नागरिकों के हृदय मे सद्भावना, प्रेम तथा सहयोग होगा। इनके आधार पर जिस सभ्यता का निर्माण होगा वह ठोस और न्यायसगत होगी।

नागरिकता का तीसरा तत्त्व राष्ट्रीयता (Nationality) है। इससे नागरिक के हृदय मे अपने देश के प्रति प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होती है। एक कवि ने लिखा है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नही नर पशु निरा है और मृतक समान है॥

जिस देश मे हम निवास करते हैं उसके प्रति हमारे कुछ कर्तव्य है। हमारे भरण-पोषण तथा उन्नति मे देश का इतना बडा ऋण है कि उसे चुकाने मे हम थोडा बहुत तभी समर्थ हो सकते है जब अपने देश के गौरव को समय समय पर बढाने की कोशिश करे। विदेशों मे यह कोई भी नहीं जानता कि हिन्दुस्तान के कल्लूमल्ल अथवा देवीदास आदि व्यक्ति कैसे है। कोई देश दो,चार व्यक्तियों से यह अनुमान नहीं लगाता कि अमुक देश का गौरव कैसा है। इसका अनुमान परम्परागत सभ्यता, सामाजिक निर्माण तथा देशवासियो की राष्ट्रीयता से लगाया जाता है। राष्ट्रीयता के अन्दर मुख्य चार बाते है, जिनका रहना प्रत्येक उन्नतिशील राष्ट्र के लिये अनिवार्य है। प्रत्येक देश की एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिये। उसकी अपनी सरकार रहनी चाहिये। नागरिको की वेष-भूषा तथा खान-पान मे अधिक समानता होनी चाहिये। उस देश का एक ऐसा इतिहास होना चाहिये जिस पर नागरिको को समान रूप से गर्व हो। यदि ये चारो बाते किसी देश मे पायी जाती है तो वह राष्ट्र कहलाने का अधिकारी है।

विश्व-नागरिकता (World citizenship)—लोगों का विचार है कि राष्ट्रीयता की वृद्धि से ससार के अंदर कलह का बीजारोपण हुआ है। जब किसी देश के रहने वाले अपने देश को उन्नति की एक श्रेणी तक पहुँचा देते हैं तो उनके अदर एक प्रकार का अहकार पैदा होता है। वे अन्य देशवासियों को छोटा समझने लगते है। अपनी सभ्यता तथा रहन सहन के सामने उन्हे दूसरों की अच्छी से अच्छी सभ्यता तुच्छ जान पड़ती हे। वे व्यर्थ के अहंकार मे आकर दूसरे देशों को सभ्य बनाने की चिन्ता करने लगते हैं। इसके साथ ही वे अपने देशवासियों के हित का इतना ध्यान रखते है कि जीते हुए देश इनकी आमदनी के बहुत बड़े।जरिये बन जाते है। अपने स्वार्थ को स्थायी रूप देने के लिये पराजित देशवासियों से अनेक प्रकार की लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती हैं तथा उन पर अमानुषिक अत्याचार करने पड़ते है। वर्तमान राष्ट्रीयता का यही दुष्परिणाम है। यूरोप के चन्द दश वर्तमान युद्ध के कारण है। यदि वे अपने अहंकार आर स्वार्थ को कम कर दें तो इस भयकर लड़ाई की आवश्यकता जाती रहेगी। परन्तु राष्ट्रीयता के आवेश मे आ कर उनके देशवासी ऐसा कदापि नहीं कर सकते। इसीलिये कहा जाता है कि राष्ट्रीयता एक घातक बीमारी है जिसका जल्दी से जल्दी अत होना चाहिये। इसके स्थान पर देशवासियों के अंदर एक ऐसी भावना जागृत होनी चाहिये जो उन्हे यह सिखलाए कि किसी भी देश में रहने वाला मनुष्य हमारा ही भाई है और उसका दुःख दर्द हमारा दुःख दर्द है अर्थात ससार में एक ऐसी नागरिकता का प्रादुर्भाव हो जिससे मनुष्य मनुष्य मात्र से प्रेम करे।

जब एक देश में अमीर और गरीब के रहते हुए कभी शांति

स्थापित नहीं हो सकती तो यह कैसे माना जाय कि दो चार देशों की उन्नति से संसार की कोई ठोस व्यवस्था बन सकती है। जब तक एक देश के रहने वाले अपने आपको दूसरे देश-वासियों से बड़ा समझेंगे तब तक सभी देशों में एक परस्पर सहयोग की भावना जागृत नहीं हो सकती। एक कुटुम्ब की उन्नति से पूरे गाँव की उन्नति नहीं होती। दो चार शहरों के बढ जाने से देश का गौरव नहीं बढ़ता। इसी प्रकार संसार के दो चार देशों की वृद्धि से संसार की उन्नति नहीं हो सकती। उन्नति का रास्ता यह नहीं है कि एक देश अपनी उन्नति के लिये दो चार देशों को गुलाम बना ले और उन पर भार हो जाय। यह तो पतन की एक पराकाष्ठा है। विश्वनागरिकता के अंदर यह भाव पाया जाता है कि कोई भी मनुष्य अपने ही देशवासियों की उन्नति से संतोष न करे। उसके कार्य ऐसे न हों जिनसे दूसरों की किसी प्रकार से हानि हो। उनकी नीति ऐसी न हो जिनसे उनके व्यापार की वृद्धि और दूसरों के व्यापार में क्षति हो।

वर्तमान वैज्ञानिक साधनों के कारण मनुष्यों का सहयोग बढ रहा है। एक देश के रहने वाले कितने ही देशवासियों से अपना संबंध स्थापित करते हैं। उन्हें चाहिये कि सब के साथ ऐसा व्यवहार करें जिससे किसी के अन्दर यह भाव न रह जाय कि अमुक देश के रहने वाले बड़े और अमुक देश के छोटे होते हैं। जिस देश के अंदर जो विशेषता होगी वह छिपी नहीं रह सकती। प्रत्येक देश के अन्दर कुछ ऐसी बातें है जिनसे दूसरे देश के रहने वाले लाभ उठा सकते है। परन्तु यह तभी हो सकता है जब नागरिकता की कोई सीमा न रखी जाय। अपने ही देश की उन्नति अवनति तक सीमित रहना अपने विचारों को संकुचित करना है। महापुरुषों के विचार इस बात

के प्रमाण है कि मनुष्य मात्र एक है और उसकी उन्नति की योजना समान रूप से बननी चाहिये ! बुद्ध, मसीह, मोहम्मद साहब, दयानन्द आदि महापुरुषों ने अपना सन्देश मनुष्य मात्र को सामने रख कर सुनाया है। यदि उन्नतिशील राष्ट्र इस नीति से कार्य करे तो उनके प्रयत्न से संसार में शांति रह सकती है।

अध्याय ७

शासन-विधान की आवश्यकता

Necessity of a Constitution.

परिभाषा—जिस जगह पर कुछ लोग निवास करते हैं वहाँ रहन सहन के लिये कोई व्यवस्था बनानी पड़ती है। लोगों के हित की दृष्टि से अनेक प्रकार के नियम उपनियम बनाये जाते हैं। उनको उन्नति के लिये कितने ही प्रकार के संगठनों की उत्पत्ति होती है। इसीलिये प्रत्येक देश का एक शासन-विधान होता है। सरकारी संगठन की रूपरेखा का दूसरा नाम शासन-विधान है। इसकी परिभाषा विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डाइसी लिखता है, "शासन उन राजकीय नियमों को कहते है जो प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से राजसत्ता पर अपना प्रभाव डालते हैं"। नीतिशास्त्र का विद्वान आस्टिन लिखता है, "शासन-विधान उस नियम को कहते है जो सरकार की रूपरेखा का निर्माण करता है।" ब्राइस के अनुसार "शासन-विधान उन नियमों को कहते हैं जो सरकार के आकार का निर्माण और उसके प्रति नागरिक के अधिकार और कर्तव्यों की व्याख्या करते है।"

इन परिभाषाओं मे थोड़ा बहुत मत-भेद होते हुए भी सबमें एक घनिष्ठ एकता पाई जाती है। शासन-विधान और संगठन

दोनों एक ही हैं। केवल नाम का भेद है। देश के अन्य संगठनों में राजनीतिक संगठन सब के ऊपर होता है। इसी के नियन्त्रण में अन्य संगठन अपना कार्य करते हैं। राजनीतिक संगठन ही देश में सब से महत्त्वपूर्ण संगठन माना जाता है। इसीसे देश की उन्नति का प्रश्न हल होता है। नागरिक के अधिकार और कर्तव्य बहुत कुछ शासन-विधान द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। यदि इसकी विस्तृत व्याख्या की जाय तो हमें इसी नतीजे पर पहुँचना होगा कि शासन-पद्धति उस राजनीतिक विधान को कहते हैं जिसके अन्तर्गत अनेक संगठन होते हैं जिसमें सरकार के प्रति नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों की व्याख्या होती है और जिससे सरकार की रूपरेखा का निर्माण किया जाता है।

शासन-विधान की आवश्यकता—जिस संगठन से राज्य में शांति की स्थापना हो और व्यक्ति उसके अंतर्गत अपने अधिकारों और कर्तव्यों को पहचाने, उसकी आवश्यकता कितनी अधिक है, पाठकगण स्वयं इस पर विचार कर सकते हैं। नीचे से ऊपर तक सारे देश में सरकारी संगठन का एक जाल फैला रहता है। इसलिये यह आवश्यक है कि गाँव के चौकीदार से लेकर गवर्नर जनरल तक के कर्मचारियों के अधिकार स्पष्ट कर दिये जायँ। शासन-विधान में इसकी पूरी व्याख्या की जाती है कि जनता तथा सरकार के प्रति व्यक्ति का क्या कर्तव्य है। इस की अनुपस्थिति में सरकार के सभी काम उलझन में पड़ सकते हैं। छोटा या बड़ा, प्रजातन्त्र या एकतन्त्र कैसा भी राज्य हो, शासन-विधान के बिना उसका कार्य नहीं चल सकता। हाँ, यह सम्भव है कि किसी देश का शासन-विधान लिखित न हो। फ्रांस के इतिहास में एक लम्बा समय बिना किसी शासन-विधान के पाया जाता है। कुछ फ्रेंच राजनीतिज्ञ आज भी यह कहते हैं कि

फ्रांस मे कोई शासन-विधान नहीं है। हिन्दुस्तान के सूबों में आज जिस प्रकार का शासन-विधान चल रहा है उसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि उनमें कोई शासन नहीं है। परन्तु वास्तव मे ऐसी बात नहीं है। शासन विधान के बिना सरकार का एक दिन भी काम नहीं चल सकता। कोई संगठन तब तक नहीं बनाया जा सकता जब तक इसका एक स्वरूप निश्चित न कर लिया जाय। शासन-विधान सरकारी ढाँचे का एक स्वरूप है।

शासन-विधान के गुण—यह कहना कठिन है कि कौन सा शासन-विधान सब से अच्छा है। एक ही शासन-पद्धति जो किसी देश के लिये अच्छी है, दूसरे देश मे बुरी हो सकती है। सामाजिक सगठन और भौगोलिक परिस्थिति के अनुकूल विभिन्न देशों मे अलग-अलग प्रकार की शासन-पद्धतियाँ होती हैं। प्रत्येक शासन-विधान के अन्दर अपनी एक विशेषता होती है। अफलातून के कथनानुसार एक आदर्श शासन-विधान तभी संभव है जब शासक निस्वार्थ भाव से शासन करे। अर्थात् शासन में उसकी अनाशक्ति हो। शासन-विधान को ही देख कर जनता की राजनीतिक परिस्थिति का अनुमान किया जाता है। यदि किसी देश के शासन-विधान के अदर राजनीतिक विषयों मे सरकारी कर्मचारियों को छोड कर आम जनता को चूँ तक करने का अधिकार नही है तो यह सर्वथा निन्दनीय समझा जायगा। ब्रिटिश शासन-विधान की सराहना लोग इसलिए नहीं करते है कि उसका ढाँचा सोने चाँदी का बना हुआ है बल्कि इसलिये कि इसके अन्दर एक ऐसी भावना है जिसके आगे जनता सन्तुष्ट रहती है। इगलैंड के शासन-विधान की यह विशेषता है कि वर्तमान विश्वव्यापी युद्ध के समय में भी वहाँ की जनता सरकार की टीका-टिप्पणी कर सकती है।

शासन-विधान मे प्रादेशिक अंतर होते हुए भी कुछ बाते ऐसी है जो अनिवार्य रूप से सब मे होनी चाहिये। इनके बिना अच्छा से अच्छा शासन-विधान नीरस और निस्सार प्रतीत होगा। ये गुण निम्नलिखित हैं—

१. **स्पष्टता**—प्रत्येक शासन-विधान सुलझा हुआ तथा साफ होना चाहिये। किसी प्रकार की सन्देहयुक्त बाते नहीं रहनी चाहिये। उसको पढ़ने के बाद किसी के मन मे दोअमली बात पैदा न हो। इसीलिये लिखित शासन-विधानों की महत्ता अधिक मानी जाती है। जब चीजें लिखित होती हैं तो उनमे दोहरे अर्थ का भय कम रहता है।

२. **व्यापकता**—शासन-विधान ऐसा होना चाहिये जिसमे राजनीतिक सगठन की सभी बाते पाई जायँ। न्याय, कार्य-कारिणी तथा धारा-सभा आदि के क्षेत्रों की व्याख्या भली भाँति होनी चाहिये। यही शासन-पद्धति की व्यापकता कहलाती है। यदि इसमे सरकार के किसी विभाग पर प्रकाश नहीं पड़ता अथवा किसी विभाग के कर्मचारियों का अधिकार निहित नहीं होता तो ऐसा शासन-विधान अपूर्ण समझा जायगा। सकुचित शासन-पद्धतियों मे कर्मचारी मनमानी कर सकते है, किन्तु जो शासन-विधान व्यापक है उसमे कोई खींचातानी नहीं कर सकता।

३. **सरलता**—जहाँ तक सभव हो शासन-विधान सरल तथा सूक्ष्म होना चाहिये। केवल व्यापक और मूल सिद्धांतों का समावेश इसके अन्दर होना चाहिये। छोटी-छोटी बातों की विस्तृत व्याख्या शासन-विधान के बाहर की चीज है। जो शासन-विधान जितना ही विस्तृत होगा समयानुसार उसमे परिवर्तन भी अधिक करने होंगे। इसी से बचने के लिये छोटी-छोटी बाते

इसके अन्दर नहीं रखी जातीं। पुलिस-विभाग के अधिकार और कर्तव्य तो इसके अन्दर लिखे जाते हैं किन्तु इस बात की कोई आवश्यकता नहीं है कि डाकुओं से मुकाबिला पड़ने पर एक सिपाही क्या करे। छोटी छोटी बातों का निपटारा समय-समय पर आवश्यकतानुसार सरकारी कर्मचारी स्वयं करते रहते हैं।

४. **परिवर्तनशीलता**—कोई शासन-विधान सदैव के लिये स्थाई नहीं बनाया जा सकता। लोगों के विचार बदलते रहते हैं। इन्ही के अनुकूल उनके संगठनों में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। शासन-विधान में यह परिवर्तनशीलता मौजूद होनी चाहिये। बड़ा से बड़ा संगठन समय की उपेक्षा नहीं कर सकता। जो चीज आज हमे अच्छी लगती है वही कल बुरी हो सकती है। जिस शासन-विधान से आज हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है वही रूप हमारी स्वतंत्रता मे रुकावटें डाल सकता है। इसलिये शासन-विधान ऐसा होना चाहिये जिसमे समयानुकूल परिवर्तन किये जा सके। अर्थात लोग अपनी रुचि के अनुसार उसे बदल सकें। किसी अंग्रेज विद्वान का कहना है "एक पीढ़ी के मनुष्यों को यह अधिकार नहीं है कि वे अपनी आने वाली संतान को राजनीतिक बंधन मे बाँध सकें। इसलिये प्रत्येक शासन-विधान की आयु ३४ वर्ष होनी चाहिये।" अंत मे वह लिखता है कि शासन-विधान की आयु घोड़े की आयु से अधिक न होनी चाहिये। शासन-विधान के अंदर परिवर्तन के गुण हर समय मौजूद होने चाहिये।

शासन-विधान का वर्गीकरण—(Classification of Constitution) शासन-विधान का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। कुछ लेखक ऐतिहासिक आधार पर, कुछ

स्पष्टीकरण की नीति से और कुछ भौगोलिक दृष्टि से इसका विभाजन करते हैं। एक ही शासन-विधान कई विभाजनों में लाया जा सकता है। ये विभाजन चार प्रकार से किये जाते हैं।

लिखित और अलिखित शासन-विधान (Written and unwritten constitution) १—इस विभाजन के अनुसार ससार के सभी शासन-विधान दो कोटि में रखे जा सकते है। जिन देशों के शासन-विधान लिखित है वे एक कोटि मे और बाकी दूसरी कोटि मे माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि शासन-विधान या तो लिखित हो सकता है या अलिखित। लेकिन यह विभाजन सर्वथा अपूर्ण है। कोई भी शासन-विधान पूर्णतया अलिखित नहीं हो सकता। यह भी सभव नहीं है कि ासन सम्बन्धी सभी बाते लिखित कर ली जाये। देश की ारम्परा और रस्म रिवाजों को बहुसख्यक जनता अधिक जरूरी नमझती है। सरकारी नियमों का वह उल्लघन कर सकती है ारन्तु परम्परा को नहीं तोड़ सकती। सभी शासन विधानों मे कुछ लिखित और कुछ अलिखित बाते होती हैं। अन्तर केवल परिमाण का होता है।

यद्यपि यह विभाजन विवाद ग्रस्त है फिर भी इसकी थोड़ी बहुत उपयोगिता हो सकती है। जो शासन-विधान अधिक से अधिक लिखित होता है वह उतना ही स्पष्ट माना जाता है। उसका इतिहास आइने की तरह होता है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का सघ-शासन-विधान अधिक से अधिक अश मे लिखित है। किसी राजनीतिज्ञ का कहना है कि यह शासन-पद्धति २५ मिनटों मे पढ़ी जा सकती है। अलिखित शासन-विधान मे कुछ बाते तो लिखित होती है परन्तु अधिकतर चीजे रस्म रिवाज के अनुसार वर्ती जाती हैं। जनसाधारण अपने धार्मिक

विश्वासों तथा सामाजिक नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किसी विशेष परिस्थिति मे ही उन्हे सरकारी कानूनों का आश्रय लेना पड़ता है। वर्तमान समय में लगभग सभी देशों का झुकाव लिखित शासन-विधान की ओर है। सभी अपने शासन-विधान को लिखित रूप मे कर लेना चाहते हैं।

विकसित और बनावटी शासन-विधान (Evolutionary and rigid constitution) २—शासन-विधानों का वर्गीकरण ऐतिहासिक आधार पर भी किया गया है। जो शासन-विधान बहुत ही प्राचीन है और इतिहास मे जिनकी उत्पत्ति का कोई निश्चित समय नहीं मिलता वे विकसित शासन-विधान कहलाते हैं। उनका वर्तमान रूप सदियों के विकास से बना है। आवश्यकतानुसार उनमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहे है। विकसित शासन-विधान लोकमत के निकट होते हैं। इसमे सामाजिक नीति का अधिक समावेश होता है। जनता को इसमे परिवर्तन करने में कठिनाई नहीं होती। इगलैंड की शासन पद्धति विकसित है। भारतीय शासन-विधान भी क्रमशः विकसित हुआ है। ब्रिटिश काल मे किसी एक निश्चित तारीख को इसका निर्माण नहीं हुआ। करीब १५० वर्षों से, अर्थात् ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से लेकर आज तक इसके एक एक अग पुष्ट होते गये है। साथ ही वर्तमान शासन-विधान मे कितनी ही ऐसी बातें मौजूद है जो हिन्दू तथा मुसलमान काल मे पाई जाती थी। विकसित शासन-विधान की सब से बड़ी विशेषता यह है कि एक ओर जड तो उसकी भूतकाल मे होती है, दूसरी ओर इसका कदम उन्नति की ओर रहता है। नई चीज की आवश्यकता हुई कि शासन-

विधान मे नये सुधार कर दिये गये। विकसित शासन-विधान मे क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता कभी नही पडती। जनता को यह विश्वास रहता है कि वह जब चाहेगी तब इसमे परिवर्तन कर सकेगी।

बनावटी शासन-विधान के अन्दर उपरोक्त गुण नहीं होते। यह किसी निश्चित वर्ष मे बना हुआ होता है, जब देश के निवासी आवश्यकतानुसार किसी समय अपना शासन-विधान बना लेते है। "बनावटी" शब्द से तात्पर्य यह है कि अमुक शासन-विधान विकसित न होकर बनाया गया है। लेकिन इससे यह तात्पर्य नहीं है कि बनावटी शासन-विधान का विकास होता ही नही। समय-समय पर इसमे भी परिवर्तन होते रहते है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का शासन-विधान बनावटी कहलाता है। १७८३ मे जब यह देश पूर्ण रूप से स्वतत्र हो गया तभी इसका शासन विधान बनाया गया। समय-समय पर परिवर्तन होते हुए भी जिस उद्देश्य को सामने रख कर आरम्भ मे इसका निर्माण किया गया था वह आज भी मौजूद है। जब किसी देश की क्रान्ति मे क्रान्तिकारी सफल हो जाते है तो बनावटी शासन-विधान आवश्यक हो जाता है। वर्तमान रूसी शासन विधान बनावटी है। वह १९१७ ई० में रूसी क्रान्ति के पश्चात् बनाया गया था।

परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील शासन-विधान

(Flesible and rigid Constitution) ३—परिवर्तनशील शासन-विधान उसे कहते है जो सरलतापूर्वक बदला जा सके जिसका बदलना कठिन हो वह अपरिवर्तनशील शासन-विधान कहलाता है। पहले परिवर्तनशील शासन-विधान पर विचार करे। प्रत्येक देश मे दो प्रकार के कानून होते है। साधारण

कानूनों से सरकार के दैनिक कार्य चलते हैं। दूसरे प्रकार के वैधानिक कानून(Constitutional Laws) कहलाते हैं। जब कभी शासन-विधान मे परिवर्तन करना होता है तो इसी वैधानिक कानूनों द्वारा किया जाता है। कुछ देशों में दोनों प्रकार के कानून एक ही है। एक ही धारा सभा इन्हें बनाती है और वही इन्हें हटा भी सकती है। इगलैंड ऐसा ही देश है और एक ही पार्लियामेंट से पूरा काम चलता है। अब तक भारतवर्ष मे वैधानिक तथा साधारण कानूनों मे अतर रहा है। भारतीय धारा सभाएँ कानून तो पास कर सकती थी, परन्तु शासन-विधान मे वे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकती थीं। यह अधिकार केवल ब्रिटिश पार्लियामेंट को था जो भारतीय शासन-विधान की सरक्षक कहलाती थी। जिन देशों में इन दोनों प्रकार के कानूनों मे कोई अतर नहीं होता वहाँ का शासन-विधान परिवर्तनशील कहलाता है। परिवर्तनशील शासन-विधान जनता के उद्गार का मुकाबिला भली भाँति कर सकता है। इगलैंड का शासन विधान परिवतनशील कहलाता है। किसी भी समय पार्लियामेंट इसे बदल सकती है।

परिवर्तनशील शासन-विधान मे कुछ अवगुण भी पाये जाते है। जो शासन-विधान बार बार बदलता रहता है वह क्षणिक कहलाता है। उससे देश का कोई लाभ नहीं हो सकता। क्षणिक आवेश मे आकर जनता इसे बदल सकती है। किसी भी प्रकार की कठिनाई उपस्थित होने पर उसकी दृष्टि शासन-विधान की ओर पड़ती है। फ्रांस की राज्यक्रान्ति मे क्रान्तिकारियों का ध्यान एक मात्र शासन की ओर था। उसी मे उन्हें जनता के अधिकार दिखाई पड़ते थे। राज्यक्रान्ति से अब तक कई प्रकार का शासन-विधान फ्रास मे बन चुका, परन्तु पिछले

शासन को छोड़कर कोई भी २० वर्ष से अधिक नहीं रह सका।' इसकी वजह यही है कि वहाँ की जनता को शासन-विधान के बदलने की आदत सी पड़ गई है। बार-बार परिवर्तन होते रहने से देश मे राजनीतिक दलबन्दियों की वृद्धि होती है। परिवर्तनशील शासन-विधान के अदर धारा सभा के सदस्यों के अधिकार इतने अधिक हो जाते हैं कि वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर सकते है। इसलिये यह शासन-विधान उस समुदाय या देश मे सफल हो सकता है जहाँ की जनता शिक्षित और उत्तरदायी है।

अपरिवर्तनशील शासन-विधान वह है जो आसानी से बदल न सके। इस शासन-विधान मे तभी कोई परिवर्तन हो सकता है जब वैधानिक कानूनों का आश्रय लिया जाय। साधारण कानून इसमे काम नहीं कर सकते। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका का शासन-विधान अपरिवर्तनशील कहलाता है। इसमे तब तक कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जब तक काग्रेस (अमेरिका की धारा-सभा) के दो तिहाई सदस्य इसका समर्थन न करे। साथ ही जितनी रियासते सघ शासन मे शामिल है उनमे भी तीन चौथाई का बहुमत आवश्यक है। इतनी उलझन के बाद ही कोई परिवर्तन किया जा सकता है।

इस अपरिवर्तनशील शासन-विधान के तीन मुख्य गुण है। एक तो इसमे स्थायीपन का भाव रहता है। कोई भी चतुर व्यक्ति इसे इसलिये समझ सकता है कि यह निहायत स्पष्ट और साफ होता है। इसके अन्दर सरकारी कर्मचारियो के अधिकार भली भाँति स्पष्ट किये जाते हैं। इससे वे अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग नहीं कर सकते। तीसरे, इसके अंदर दलबन्दियों का भय कम होता है। लेकिन इसमे कुछ

कमजोरियाँ भी हैं। कोई भी शासन-विधान हमेशा के लिये पूर्ण नही कहा जा सकता। इसकी अपरिवर्तनशीलता इसे नीरस और बेकार बना देती है। जनता में असन्तोष की भावना बढ़ जाती है। क्रान्ति का भय रहता है। जब आवश्यक परिवर्तनों की अवहेलना कर दी जाती है तो जनता में क्रोधाग्नि की ज्वाला का बढना स्वाभाविक है। शासन-विधान मे समय-समय पर परिवर्तन न किये जायँ तो इसके बंधन मे रहकर जनता उन्नति नही कर सकती। लार्ड मेकाले का विचार निहायत सही है कि क्रान्ति का मूल कारण शासन-विधान की अपरिवर्तनशीलता है। अपरिवर्तनशील शासन-विधान लिखित होने के कारण शाब्दिक जाल से इतना जकड़ा होता है कि उसे समझना कोई सरल काम नही है। इसलिये सबसे अच्छा शासन-विधान वह है जो परिवर्तनशील तथा अपरिवर्तनशील दोनों के मेल से बना हो। वर्तमान समय मे सभी देश अपरिवर्तनशील शासन-विधान के पक्ष मे हैं।

एकात्मक और संघात्मक शासन-विधान—(Unitary and Federal constitution). ४—एकात्मक शासन-विधान उसे कहते है जिसमे सरकार अपना सब काम एक केन्द्रीय स्थान से करे। शासन की सुविधा के लिये वह प्रान्तीय सरकारों तथा स्थानीय संस्थाओं को थोड़े बहुत अधिकार दे सकती है, परन्तु सम्पूर्ण अधिकार केन्द्रीय सरकार मे निहित होते है। वह जब चाहे बिखरे हुए अधिकारों को वापस ले सकती है। इंगलैंड, फ्रांस, इटली, हिन्दुस्तान आदि देशों का शासन-विधान एकात्मक है। एकात्मक राज्य मे केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय कार्यकारिणी, केन्द्रीय धारा-सभा तथा केन्द्रीय न्यायालय को प्रमुख शक्ति प्राप्त होती है। इन्हीं की अध्यक्षता

मे बाकी शक्तियाँ अपना काम करती है। एकात्मक शासन-विधान उन राज्यों मे अधिक सफल हो सकता है जो क्षेत्रफल मे छोटे है और जिनके अन्दर रस्म-रिवाज मे विषमता नहीं है।

संघात्मक शासन-विधान के अदर केन्द्रीय सरकार अवश्य होती है, परन्तु प्रान्तो अथवा रियासतों को, जो उस संघ मे शामिल है, अनेक अधिकार प्राप्त होते है। मान लीजिये कोई देश अपने को सगठित तथा शक्तिशाली बनाना चाहता है। उसके अदर छोटे-छोटे प्रान्त अथवा रियासतें हैं। इन सब के सामूहिक मिलन से जो शासन-विधान बनाया जाता है उसे संघात्मक कहते है। केन्द्रीय सरकार उन विषयों को, जो सम्पूर्ण देश से सम्बन्ध रखते है, अपने अधिकार मे रखती है। देश की रक्षा, तार, डाक, रेल आदि इसके अतर्गत है। बाकी विषयों मे प्रान्त व रियासते स्वतंत्र होती है। अर्थात् संघात्मक राज्य में प्रान्त वा रियासते अपनी राजसत्ता कायम रखती है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, रूस, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैंड, कनाडा, दक्षिणी अफ्रिका आदि देशों मे संघात्मक शासन-विधान है। संघात्मक शासन-विधान मे दो सरकार, प्रान्तीय तथा रियासतों की सरकार और केन्द्रीय सरकार, होने से शासन की सभी मशीनें दोहरी होती है। दो धारा सभा, दो कार्यकारिणी, दो न्यायालय, दो राजसत्ता, दो कानून, दो टैक्स आदि दोहरी चीजे इस शासन विधान मे पाई जाती है।

प्रश्न यह है कि संघात्मक शासन-विधान की क्या आवश्यकता है। एकात्मक शासन से ही क्यों नहीं काम चला लिया जाता? संघ-शासन की स्थापना मुख्य ६ दृष्टियों से की जाती है:—

१—छोटे-छोटे राज्यों के सगठन से संघ सरकार की शक्ति बढ़ जाती है और वह दृढ़ता-पूर्वक किसी बाहरी हमले का मुकाबिला कर सकती है।

२—सब के मिलने से देश की आर्थिक तथा सांस्कृतिक दशा मे उन्नति होती है।

३—जो देश छोटे-छोटे प्रान्तों में बिखरा हुआ है वहाँ संघ-शासन-विधान इन सब को एक सूत्र मे बाँधकर दृढ राष्ट्रीयता का निर्माण करता है।

४—सघ-शासन-विधान से देश की अन्तर्राष्ट्रीय मर्यादा बढ़ जाती है। उसकी राजनीतिक शक्ति बढने से विदेशी शक्तियाँ उसका आदर करती हैं।

५—सघात्मक शासन-विधान में क्रान्ति का भय नही रहता। जनता अपनी इच्छानुसार अपना प्रबध करती है और वह हर प्रकार से सन्तुष्ट रहती है।

६—एकात्मक शासन-विधान मे केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकार से सदैव संदेह रहता है। परन्तु संघात्मक शासन-विधान में वह भयभीत नही रहती। आतरिक शांति के लिये उसे किसी बड़ी फौज की आवश्यकता नही होती। इसलिये सघ-शासन-विधान मे सरकारी व्यय कम पड़ता है।

सघ-शासन के लिये कुछ शर्तें आवश्यक हैं। इनके बिना बड़े से बड़े देश मे इसकी स्थापना नही हो सकती। डाइसी के कथनानुसार सघ-शासन मे चार बातों का होना अनिवार्य है:—

१—देश में छोटे-छोटे कई राजनीतिक विभाग (Political Divisions) जब तक नहीं होंगे तब तक कोई संघ नही बनाया जा सकता।

२—अच्छा तो यह हो कि ये राजनीतिक विभाग क्षेत्र फल में बराबर हों और इनके अन्दर एक सांस्कृतिक एकता (Cultural Unity) हो परन्तु इसकी अनुपस्थिति में भी सघ-शासन की स्थापना हो सकती है।

३—सभी राजनीतिक विभाग समान रूप से मिलने के लिये लालायित हों। सब की यह प्रबल इच्छा हो कि एक सघ-शासन बनाया जाय। छोटे-छोटे राज्यों को दबा कर जो सघ बनाया जाता है वह क्षणिक तथा अपूर्ण होता है।

४—सभी विभागों मे कई प्रकार की समान बाते होनी चाहिये। उनके अदर निवास करने वाले व्यक्तियों का इतिहास, उनकी रहन-सहन तथा राष्ट्रीयता एक होनी चाहिये।

उपसंहार—साशन-विधान के वर्गीकरण को देखते हुये यह कहना कठिन है कि कौन सबसे अच्छा है। देश के निवासी स्वय इसका निर्णय कर सकते है कि उन्हे किस प्रकार का शासन-विधान चाहिये। उदाहरण के लिये भारतीय शासन-विधान को ले लीजिये। वर्तमान शासन एकात्मक है। इसमें किसी प्रकार की कमजोरी नही है। देश के कोने-कोने मे सरकार को धाक है और कोई कानूनों का उल्लंघन नही कर सकता। शासन-विधान वही उत्तम है जिसका निर्माण जनता स्वय करे। वर्तमान रुख सघ-शासन-विधान के पक्ष मे है। हर देश यह चाहता है कि वहाँ का शासन-विधान सघात्मक हो जाय। जो कुछ भी हो, शासन-विधान जनता के विचारों के अनुकूल होना चाहिये। उसमे सामाजिक परिवर्तन की शक्ति नितान्त आवश्यक है।

अध्याय ६

सरकार के अंग

The State and Its Machinery

राज्य और सरकार (State and Government)—प्रत्येक राज्य को अपने कार्य संचालन के लिये एक ऐसी व्यवस्था की, जो उसके राष्ट्रीय जीवन को सगठित रूप से सुखी और शान्तिमय बनाने में सफल हो, आवश्यकता पड़ती है। जो सस्था इस व्यवस्था को कार्य रूप मे परिणत करने मे सहायक होती है उसे हम सरकार (Government) कहते है। सरकार (Government) राज्य (State) का मुख्य अग है। बिना सरकार (Government) के राज्य (State) मे एक पत्ता भी नही हिल सकता। राज्य (State) राष्ट्र (Nation) की आत्मा और सरकार (Government) उसका शरीर है। राज्य (State) और सरकार (Government) राष्ट्र (Nation) की दो टांगे है, जिसके बल चलकर, राष्ट्र अपने पूर्ण अस्तित्व को प्राप्त होता है। राज्य (State) एक बड़ा समुदाय है और सरकार (Government) उसका कार्य-कारी दल है। राज्य (State) के सब कार्य की देख भाल सरकार (Government) को करनी पड़ती है। राज्य (State) और सरकार (Government) मे मुख्य भेद यह है कि राज्य (State) अचल है, उसका रूप स्थायी है, जिससे परिवर्तन नही होता, किन्तु सरकार (Government) चल है, इसके रूप का सदा परिवर्तन होता रहता है। राज्य (State) अमर है इसका कभी अन्त नहीं होता। सरकार (Government) अस्थायी है, और समय-समय पर बदलती रहती है।

सरकार (Government)—हम अकसर सुनते है कि सरकार ने अमुक कानून पास किया है। अखबारों में कभी तो सरकार की प्रशंसा और कभी निन्दा की जाती है। हम यह भी सुनते है कि अमुक देश की सरकार अच्छी और अमुक की बुरी है। हमारे देश मे लोगों की यह आम शिकायत है कि सरकार उनकी बातों पर बहुत कम ध्यान देती है। कपडे की तरह स्वदेशी और विदेशी सरकार भी होती है। हम यह भी सुनते है कि सरकार अमुक विषय पर विचार कर रही है। इन बातों से तो यही मालूम पडता है कि सरकार मानों एक स्त्री है। उसके भी हाथ, पाँव, आँख और कान है। पेरिस नगर मे एक बार किसी स्त्री के लड़के को कोई सरकारी नौकरी मिली। दूसरे दिन उस स्त्री ने अखबार मे पढ़ा कि सरकार ने उसके लड़के को नौकरी दी है। स्त्री की खुशी का वारापार न रहा। उसने टोकरी मे फल फूल लेकर लोगों से पूछना आरम्भ किया कि सरकार का घर कौन सा है, ताकि वह उसे उन फलों को दे दे। लोगों ने उसे समझाया कि सरकार कोई शरीर धारी प्राणी नहीं है। तात्पर्य यह है कि हमे यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि सरकार किसे कहते है।

प्रत्येक राज्य में एक राजनीतिक सगठन होता है। कानून बनाने के लिये कोई सभा होती है। उस कानून की देखरेख के लिये कुछ कर्मचारी होते है। जो लोग कानूनो को तोड़ते है उन्हें दण्ड देने के लिये कचहरियाँ होती है। प्रजा से टैक्स वसूल करने के लिये अनेक कर्मचारी नियुक्त किये जाते है। शिक्षा, सफाई और स्वास्थ्य की देख-भाल के लिये हजारो कर्मचारी नियुक्त होते है। इन सब का अलग-अलग संगठन रहता है। फिर इन सब का केन्द्रीय सगठन होता है। जिस प्रकार पेड़ का

तना एक होता है लेकिन उसकी शाखाएँ और उपशाखाएँ बहुत सी रहती है, उसी तरह सरकार का केन्द्रीय संगठन एक होता है और उसके अन्दर अनेक छोटे-छोटे संगठन होते हैं। नीचे से ऊपर तक यह संगठन राजनीतिक संगठन कहलाता है। इसी संगठन को एक शब्द में "सरकार" कहते हैं। जो जो काम इसके द्वारा किये जाते हैं वे सब सरकार के काम कहलाते हैं।

जब यह सरकारी संगठन स्कूल खोलता है तो लोग कहते है कि सरकार ने एक स्कूल खोला है। जब टैक्स वाला सगठन कोई टैक्स लगाता है तो हम कहते हैं कि सरकार ने टैक्स लगाया। जब कानून बनाने वाला संगठन कोई कानून बनाता है तो हम कहते है कि सरकार ने एक कानून बनाया है। जिस देश में कानून बनते हों, इनकी देख-रेख का उचित प्रबन्ध हो और अपराधियों को दण्ड देने के लिये कचहरियाँ हों, तो हमे यह मान लेना होगा कि वहाँ कोई न कोई सरकार अवश्य है। इससे स्पष्ट है कि सरकार प्रजा की ही बनाई हुई एक मशीन है जो राज्य मे शांति और उन्नति की व्यवस्था करती है।

सरकार के गुण (Qualities of a government)—जब हम अमुक राज्य को अच्छा और दूसरे को बुरा कहते हैं तो हमारा तात्पर्य सरकार से होता है। राज्य अच्छा या बुरा नही हो सकता। सरकार अच्छी और बुरी होती है। अच्छी सरकार से अच्छा राज्य बनता है। सरकार की शक्ति अनंत है और वह जो चाहे कर सकती है। इसका तात्पर्य यह नही है कि वह एक अनियमित शक्ति है। नियम का उल्लघन वह कदापि नही कर सकती। उसका सबसे बड़ा गुण यह माना गया है कि वह स्वयं नियमों का पालन करे और दूसरे से कराये। जितने भी कानून बनते है, सरकार उन सब की रक्षा करती है और

जनता को उनके पालन का मार्ग प्रदर्शित करती है। व्यक्ति के अन्दर जितने भी अच्छे गुण हो सकते हैं वे सब सरकार मे पाये जाते है। व्यक्तियों के गुणों और अच्छी भावनाओं के सगठन से उसकी उत्पत्ति होती है। सरकार न्याय पर कायम है। यह मजाल नही कि बड़ा से बडा सरकारी अफसर राज्य का एक पैसा खा जाय। सरकार उसे वही द ड देगी जो एक मामूली चोर को। द ड देने मे वह सदैव निष्पक्ष रहती है। समाज की अच्छी प्रवृत्तियो को वह जागृत करती है और बुरी भावनाओं को दबाकर जनता को आगे बढ़ाती है। राज्य मे एकता और समानता का भाव फैला कर विभिन्न कलाओं को जन्म देती है। जो काम व्यक्ति नही कर सकता और समाज जिसे करने का अवसर नहीं पाता, उसे सरकार क्षण मात्र मे कर सकती है। बाल विवाह की प्रथा रोकने के लिये हमारे देश मे वर्षों से कोशिश की जा रही थी। व्यक्ति और समाज दोनों जी जान से इसके पक्ष मे थे, किन्तु रूढ़िवादियों के आगे उनकी एक नहीं चलती थी। लेकिन "शारदा बिल" को पास कर सरकार ने इसे बन्द कर दिया। यद्यपि अब भी चोरी से कुछ लोग इस कानून का उल्लघन करते है फिर भी हम सरकार की शक्तियों का इससे अन्दाज लगा सकते है।

बुरों से भलो की रक्षा करना, देश देशातरो से अनुभवशील व्यक्तियों को बुलाकर अपने देश की उन्नति करना, अच्छे से अच्छे कानूनों द्वारा अपने देश वासियो का कल्याण करना, न्याय को बरतना, अमीर और गरीब के भेदभाव को मिटाते रहना तथा इसी प्रकार के और भी कामों का सरकार करती रहती है। देश की रक्षा और शाति का पूरा भार उस पर रहता है। इन कर्तव्यो से यह जाहिर है कि सरकार के गुणों की सूची हम तैयार नही कर सकते। उसके एक एक गुण हर कानून और

करामात मे दिखलाई पड़ते हैं। हर व्यक्ति और समाज जहाँ अपनी-अपनी भलाई और खुदगर्जी की बातें करता है वहाँ सरकार इन सब की भलाई का उपाय सोचती है। उसकी नजरों मे न कोई अमीर है और न गरीब। वह जाति-पाँति तथा काले सफेद का फरक नहीं करती। कुछ सरकार ऐसी है जो काले सफेद का फरक करती है, लेकिन हम उनकी तारीफ नही करते। अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका में सफेद और काले का भेदभाव किया जाता है, लेकिन इसके लिये दुनिया उन्हे कोसती है। सरकारी असूल राज्य को बेहतरी के लिये है। सरकार की रूपरेखा भले ही बदल जाय लेकिन उसके गुणो में कतई फरक नही पड सकता, बशर्ते कि सरकार की नीयत ठीक हो।

जहाँ सरकार के इतने गुण हैं, वहाँ थोड़े से अवगुण भी है। वह अपनी शक्ति का अदाज जरूरत से ज्यादा रखती है। स्वभाव से रूढ़िवादी होने के कारण सभी सामाजिक सुधारों मे आरंभ मे अड़चनें डालती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही सरकार अपने देश मे अच्छे और विदेशों के लिए घातक कानून बनाती है। कुछ सरकार आज २० वीं सदी मे तलवार और बन्दूकों को अपनी शक्ति समझती है। इसकी वजह यह है कि दुनिया की हवा आज बदली हुई है। सरकार का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह जनता की राय पर कायम रहे, लेकिन आज वे जनता को ठुकरा कर जीवित रहना चाहती है। ऐसी सरकार स्थाई नही रह सकती। सरकार मे एक और भी दोष है। अपनी कमी और काहिली के कारण कभी-कभी वह धनी और स्वार्थी व्यक्तियों की जमात बन जाती है। सरकार परिवर्तन से डरती है। वह अपने ढांचे को, चाहे वह कितना ही पुराना अथवा निकम्मा क्यों न हो, बदलना नही चाहती।

अपनी हार का अन्दाज लगते ही पैशाचिक शक्तियों का उपयोग करने मे वह ज़रा भी हिचक नहीं करती । विदेशी सरकार अपने देश की बेहतरी के लिये दूसरे देशों को बडी खुदगर्जी से चूसती और तबाह करती है ।

सरकार और नागरिक (Government and citizens)--नागरिक अपनी सुविधा के लिये अपने देश मे राजनीतिक सगठन या सरकार का निर्माण करत है । इसे सफल बनाने के लिये उन्हे सरकार के प्रति कुछ कर्तव्यो का पालन करना पड़ता है । सरकार को नियमित टैक्स देने पड़ते है । सरकारी कानूनों का उन्हे आदर करना पड़ता है । सरकारी कर्मचारियों की आज्ञाएँ माननी पड़ती है । इसके बदले मे सरकार के भी नागरिकों के प्रति कुछ कर्तव्य हैं । जो सरकार उन कर्तव्यों का पालन नही करती वह निन्दनीय और बुरी समझी जाती है । देश मे शांति स्थापित करना, प्रजा से उचित टैक्स लेना, अच्छे-अच्छे कानूनों का बनाना, योग्य और अनुभवी कर्मचारियों की नियुक्ति करना तथा प्रजा से लिये हुए धन का उपयोग उचित रीति से करना सरकार के मुख्य कर्तव्य है । सरकार और नागरिक का सम्बन्ध माली और बगीचे की तरह है । जिस प्रकार माली बगीचे को हराभरा रखता है और उससे उतना ही फूल तोड़ता है जिससे बगीचे की शोभा नष्ट न होने पाये, उसी तरह सरकार को भी प्रजा को सुखी और प्रसन्न रखना चाहिये।। जिस देश की प्रजा दुखी और असन्तुष्ट होती है वहाँ की सरकार अच्छी नही कहलाती ।

सरकार के अंग (Organs of Government)—जिस प्रकार किसी कुटुम्ब की सारी जिम्मेवारी उस घर के

मालिक पर होती है, उसी तरह राज्य का सारा भार सरकार पर निर्भर है। थोड़ी भी असावधानी से राज्य का अन्त हो सकता है। कुटुम्ब को हम ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि व्यक्ति अलग-अलग कामों में लगे हुए हैं। घर के मालिक ने उनके कामों को बाँट दिया है। सब के काम का महत्त्व एक सा है। एक की लापरवाही का असर सारे कुटुम्ब पर पड़ता है। कुटुम्ब की तरह सरकार ने भी अपने कामों को कई विभागों में बाँट रखा है। उसके ऊपर इतनी बड़ी जिम्मेवारी है कि कार्य विभाजन के बगैर ठीक-ठीक काम नहीं हो सकता। उसे इतने कर्तव्यों का पालन करना है कि बिना उनका वर्गीकरण किये वह सुचारु रूप से सब को इन्तज़ाम नहीं दे सकती। उसका काम केवल टैक्स वसूल करना और कानूनों को पास कर देना नहीं है। उसे यह देखना पड़ता है कि उन कानूनों का पालन हो रहा है या नहीं। जो लोग उन्हें भंग करते हैं उनके दंड की व्यवस्था करनी पड़ती है। दंड देने के लिये नियम तथा न्यायालय दोनों बनाने पड़ते हैं। कुछ लोग इसी लिये नियुक्त किये जाते हैं कि वे इस बात का पता लगाते रहें कि कौन-कौन लोग कानून को तोड़ रहे हैं।

सरकार के कामों की गिनती से हम पार नहीं पा सकते। उसका काम तीन भागों में बंटा हुआ है। इन्हीं ३ भागों को सरकार का तीन अंग कहा गया है। सरकार के जितने भी काम हैं वे सब इन्हीं भागों के अंतर्गत आ जाते हैं। इसलिये उसके तीन मुख्य काम कहे गये हैं। यह देश के लिये कानून बनाती है; उनके पालन करने के लिये जनता को बाध्य करती है और जो कोई उसे तोड़ता है उन्हे उचित दंड देती है। अथवा यों कहना चाहिये कि सरकार रूपी वृक्ष की ये तीन शाखाएँ हैं बाकी उपशाखाएँ, टहनियाँ और पत्ते हैं। सरकार का जो विभाग

कानून बनाता है उसे व्यवस्थापिका सभा (Legislature) कहते है । जो विभाग कानूनों की देखरेख करता है वह कार्यकारिणी सभा (Executive) कहलाता है। तीसरा विभाग नियम तोड़ने वालों को दंड देता है। उसे न्याय समिति (Judiciary) कहते हैं। प्रत्येक विभाग का वर्णन अलग अलग करना कई दृष्टियों से अच्छा होगा। कारण यह है कि यद्यपि ये अग अलग-अलग काय करते है और इनका सगठन भिन्न है, फिर भी इनमे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये किसी सिद्धात पर ही अलग किये गये हैं।

विभाजन सिद्धांत पर एक आलोचनात्मक दृष्टि (a criticism on the principal of Division of powers)—कहने को हम सरकार के तीनों अंगों को एक दूसरे से अलग समझते है और हर अग को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करते है, लेकिन कार्य रूप मे कुछ और देखते हैं। सब से पहले हमारी दृष्टि अमेरिका की ओर जाती है। वहाँ की शासन-पद्धति की यह विशेषता समझी जाती है कि तीनों अग एक दूसरे से अलग अलग कार्य करते है। एक अमेरिकन लेखक ने कहा है," हमारी शासन-पद्धति की विशेपता सरकार का अग विभाजन है, और इसकी सब से बड़ी कमजोरी यह है कि उसमे "ईश्वर" शब्द का नाम नही है।" कांग्रेस प्रेसिडेंट और प्रधान न्यायालय (Supreme court) यद्यपि अलग-अलग हैं फिर भी इन सबका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। काग्रेस कोई ऐसा कानून नही पास कर सकती जो प्रेसिडेंट की मर्जी के खिलाफ हो। काग्रेस द्वारा पास किये गये कानून को वह रद कर सकता है। इतनी सुविधा काग्रेस को जरूर दी गई है कि वह प्रेसिडेंट के रद किए हुए कानून को दो तिहाई बहु-

मत से पास कर राज्य में लागू कर सके। लेकिन यह दो तिहाई बहुमत कांग्रेस की दोनों सभाओं में अलग-अलग होना चाहिये। प्रेसिडेंट कांग्रेस का सदस्य नहीं बन सकता। इसका अर्थ यह है कि व्यवस्थापिका सभा और कार्यकारिणी विभाग दोनों अलग-अलग है। लेकिन जब कोई आवश्यक कानून पास करना होता है तो प्रेसिडेंट उसे सदेश (Message) के रूप में कांग्रेस मे भेज देता है। और वह सन्देश कानून के रूप मे पास कर दिया जाता है। यद्यपि काग्रेस उसे पास करने के लिये बाध्य नही है, फिर भी प्रेसिडेंट का प्रभाव उसे पास करा ही देता है। फिर यह कैसे कहा जाय कि अमेरिका मे व्यवस्थापिका सभा और कार्यकारिणी सभा मे कोई सम्बन्ध नही है। अमेरिका का प्रधान न्यायालय पूर्ण स्वतत्र कहा जाता है। सरकार का कोई विभाग उसके काम मे दखल नही दे सकता। लेकिन हमे मालूम होना चाहिये कि प्रधान न्यायालय के सभी न्यायाधीशों को प्रेसिडेंट नियुक्त करता है। इस कार्य मे यह सीनेट (Senate से परामर्श लेता है। अमेरिका मे कई राजनीतिक दल है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यवस्थापिका सभा और प्रेसिडेंट के विचार एक हों और प्रेसिडेंट वही बनाया जाय जो कांग्रेस के विचारों से सहमत हो।

इंगलैन्ड मे भी ये अंग अलग किये गये है। पार्लियामेंट कानून बनाती है, केबिनेट (Cabinet) प्रधान कार्यकारिणी समिति है और प्रिवी कौन्सिल सब से बड़ा न्यायालय है। लेकिन जब हम गहराई के साथ इनका अध्ययन करते है तो पता चलता है कि ये अग नाममात्र के लिये अलग किये गये हैं। पार्लियामेंट के दो अग है, लार्ड (House of lords) और कामन सभा (House of Commons)। लार्ड सभा का सभापति जो लार्ड चांसलर कहलाता है केबिनेट का सदस्य और

प्रिवी कौन्सिल का सभापति होता है। इसका अर्थ यह है कि एक ही व्यक्ति व्यवस्थापिका सभा, कार्यकारिणी सभा, न्यायालय तीनों मे काम कर रहा है। फिर हम कैसे कहते है कि तीनों एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नही रखते। कार्यकारिणी सभा के सभी सदस्य कामन्स सभा के सदस्य होते है। इससे स्पष्ट है कि सिद्धांत रूप मे इगलैड मे ये तीनों विभाग अलग-अलग है लेकिन कार्य रूप में इनमे एक घनिष्ठ सम्बन्ध है।

फ्रास मे ये तीनों अग काफी मिले जुले दिखाई पडते है। वहाँ का प्रेसिडेन्ट जो कार्यकारिणी विभाग का प्रधान होता है व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा निर्वाचित किया जाता है। उसे यह अधिकार है कि वह सीनेट की राय से चेंबर आफ डिप्यूटीज (Chamber of deputies) को बर्खास्त करदे। जर्मनी की लडाई के पहले जर्मन सम्राट का व्यवस्थापिका सभा पर काफी प्रभाव था। आज जिन जिन देशों मे तानाशाही (Dictatorship) दिखलाई पडती है वहाँ व्यवस्थापिका सभा और न्याय समिति करीब-करीब एक ही अग बन गये है। यूरोप के कई देशों मे "कानूने हुकूमत" (Administrative Laws) की प्रथा प्रचलित है। आखिर ये कानून क्या है ? इन कानूनों को व्यवस्थापिका सभा नही बनाती। कार्यकारिणी विभाग के कर्मचारियो को यह अधिकार दिया गया है कि जरूरत पड़ने पर वे ऐसे कानून बना सकते है।

सच्ची बात यह है कि हम इन अगो को बिलकुल अलग नही कर सकते। कार्य रूप मे विभाजन का यह सिद्धांत असभव है। सरकार स्वय एक मशीन है। इसके पुर्जे पुर्जे अलग कर देने पर यह काम नहीं कर सकती। इसके सभी अग एक दूसरे से काफी मिलेजुले रहने चाहिये। राज्य एक ऐसी इकाई है कि

इसकी भलाई के लिये हम समूचे सरकार पर तो निर्भर रह सकते है लेकिन इसके एक एक टुकड़े पर भरोसा नही कर सकते। सरकार के तीनों अगों मे से कोई भी अ ग इतना शक्तिशाली हो सकता है कि वह दूसरे अगों पर हावी हो जाय। यह चीज नागरिक स्वतन्त्रता मे बाधक सिद्ध होगी। इसलिये इनके विभाजन में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अलग-अलग काम करते हुए भी आपस मे टकराने न पाये। इनका मेल उन जगहों पर जरूर रहे जहाँ से प्रजा की अधिक भलाई हो सकती है। यह कहना गलत है कि न्याय और कार्यकारिणी सभा का कार्य एक व्यक्ति के हाथ में आ जाने से समाज मे स्वतन्त्रता नही रह सकती। इगलैड की ओर हम नजर डाले तो पता चलेगा कि ये दोनों अग एक व्यक्ति के हाथ मे होते हुए भी वहाँ काफी स्वतन्त्रता है। केवल अ गों के अलग-अलग होने से स्वतन्त्रता की रक्षा नही हो सकती। तीनों अ गों के विभाजन मे हम कोई दीवाल नही खड़ी कर सकते। इसका विभाजन प्रत्येक देश मे अलग-अलग तरीके पर हो सकता है। कारण यह है कि विभिन्न देशो मे लोगों की अलग-अलग मनोवृत्तियाँ है और उनकी सामाजिक व्यवस्था मे काफी फरक है। उनके वातावरण और सस्कृति मे भी अन्तर है। इन्ही के अनुसार इन तीनों अ गों को शक्ति प्रदान की जा सकती है। पहली बात यह है कि व्यवस्थापिका सभा का स्थान इन तीनों मे श्रेष्ठ है। इसलिये इसे सब से अधिक शक्ति मिलना चाहिये। आर्थिक अधिकार केवल व्यवस्थापिका सभा को मिलनी चाहिये। क्योंकि जनता के पैसे को उसके प्रतिनिधियों को ही खर्च करने का अधिकार है। दूसरी बात यह है कि न्यायसमिति पूर्णतया स्वतन्त्र होनी चाहिये। किसी देश मे इन्साफ तब तक नहीं हो सकता जब तक न्यायालयों को पूरी स्वतन्त्रता प्रदान न की जाय। हमारे देश मे

अगों के विभाजन मे कुछ ऐसी त्रुटियाँ हैं जिन्हे हम बहुत अरसे तक चालू नही रख सकते। इनसे नागरिक स्वतन्त्रता में बाधायें पड़ती है। पहली कमी तो यह है कि जिले का कलेक्टर वहाँ के कार्यकारिणी विभाग का प्रधान भी रहा है और इन्साफ भी करता रहा है। काँग्रेस सरकार इसे दूर करने का प्रयत्न कर रही है।

व्यवस्थापिका सभा (Legislative Assembly)

व्यवस्थापिका सभा का मुख्य काम कानून बनाना है। इस सभा के सदस्य जनता के प्रतिनिधि होने चाहिये। व्यवस्थापिका सभा को "धारा सभा" (Parliament) भी कहते है। इस सभा मे नामजद होकर भी लोग आते है। हमारे देश मे अभी हाल तक काफी लोग नामजद होकर धारा सभाओं मे आते थे। सरकार अपने चुने हुए आदमियो को नामजद करके इन सभाओं म इस लिये भेजती थी कि हर मामले मे वे उसका साथ दे गे। लेकिन नामजदगी का तरीका अब दुनियाँ के हर मुल्क से निकाल दिया गया है। फिर भी इसकी बू कही कही बाकी है। धारा सभाओ मे विभिन्न मत के लोगों को अपना प्रतिनिधि भेजना चाहिये। लीकाक लिखता है, "धारा सभाओ मे जनता के अधिक से अधिक प्रतिनिधि आने चाहिये। हर दृष्टिकोण और हर समुदाय के लोगो को उसमे आने का अवसर मिलना चाहिये ताकि समाज क सभी अग उसमे स्थान पा सक।" धारा सभा मे सदस्यो की सख्या क्या हो इसमे लोगो को मतभेद है। कुछ लोग कहते है कि सदस्यो की सख्या जितनी ही अधिक होगी उतने ही प्रकार के विचारों का सहयोग प्राप्त होगा। दूसरे प्रकार के राजनीतिज्ञ इस सिद्धांत मे विश्वास नहीं रखते। वे कहते है कि कम प्रतिनिधि होने से अच्छी तरह विचार करने का मौका

मिलेगा। प्रतिनिधियों का बाजार लगाने से कोई फ़ायदा नहीं है।

प्राचीन काल मे जब कि प्रत्येक मुल्क की आवादी थोड़ी थी, प्रतिनिधि चुनने का रिवाज न था। सारी जनता इकट्ठी होकर अपने लिये नियम बना लेती थी। यूनान देश में यह रिवाज काफी अरसे तक जारी था। आवादी वढ़ जाने पर सारी जनता का एकत्रित होना असभव ही नही वल्कि खतरनाक भी है। हिन्दुस्तान को हम मिसाल के तौर पर ले सकते है। यह मुल्क काफी लम्बा चौड़ा है। फिर भी यहाँ कोई ऐसा मैदान नही है जहाँ चालीस करोड़ आदमी इकट्ठे होकर अपने लिये कानून बना सके। यदि ये आदमी एक दूसरे से मिले हुए खडे किये जायँ तो कलकत्ते से पेशावर तक उन्हें खड़े होने की भी जगह न मिलेगी। इन्हीं दिक्कतो को दूर करने के लिये प्रतिनिधित्त्व की प्रथा चलाई गई। जहाँ तक प्रतिनिधियों की सख्या का प्रश्न है, इसमे मध्यम मार्ग सब से अच्छा होगा। जिस देश की जितनी ही कम या बेस आबादी हो उसी हिसाब से वहाँ की छोटी वडी धारा सभा होना चाहिये। इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि मुल्क का कोई वर्ग इसमे स्थान ग्रहण करने से वचित न रह जाय। इससे जनता मे असतोष और द्वेष की वृद्धि होगी।

धारासभा के सबन्ध मे कुछ बातो का ध्यान प्रत्येक देश को रखना चाहिये। पहली बात तो यह है कि इसकी अवधि अधिक नही होनी चाहिये। कम से कम ३ वर्ष और अधिक से अधिक ५ वर्ष इसकी आयु हो। ससार के लगभग सभी देशों मे इन्हीं के आस पास धारासभा की आयु रखी गयी है। दूसरी बात यह है कि धारा सभा के सदस्यों को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वे कोई कानून पेश करे और उन पर अपनी जाती राय व्यक्त

कर सकें। इसके अतिरिक्त सदस्यों को कुछ ऐसी सुविधाएं मिलनी चाहिये जिनसे वे अपने निर्वाचन क्षेत्र में जाकर उसका अध्ययन कर सकें। जर्मनी में धारा सभा के सदस्यों को रेलवे का मुफ्त पास दिया जाता है, ताकि वे जहाँ चाहें बिना टिकट आ जा सकें। किसी किसी देश में सदस्यों को माहवारी तनख्वाह दी जाती है। कहीं कहीं पर यह रिवाज है कि साल के अन्त में एक निश्चित रकम जो भी सदस्य चाहे ले सकता है। जो न ले उसे कोई बाध्य नहीं कर सकता। इंगलैंड में कामन्स सभा के प्रत्येक सदस्य को यह अधिकार है कि साल के अन्त में ६०००) चाहे तो ले सकता है। व्यवस्थापिका सभा भवन के अन्दर कोई सदस्य इंगलैंड में गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। यह प्रथा लगभग सभी सभ्य देशों में पाई जाती है।

व्यवस्थापिका सभा सरकार के तीनों अंगों में प्रधान कही जाती है। कार्यकारिणी विभाग इसी के बनाये हुए कानूनों की देखरेख करता है। न्याय विभाग अपराधियों को इसी के नियमों द्वारा दण्ड देता है। तात्पर्य यह है कि सरकार के अन्य विभाग धारा सभा पर ही निर्भर रहते हैं। इसकी उपयोगिता सब से अधिक है। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ लास्की लिखता है, "आम तौर से ....कार्य कारिणी सभा और न्यायसमिति दोनों की शक्तियाँ धारा सभा की मर्जी पर कायम रहती हैं।" यदि कार्यकारिणी विभाग का कोई कर्मचारी अनुचित कार्य करे तो धारासभा उसका वेतन कम कर सकती है। इसी तरह न्याय विभाग के कर्मचारी भी व्यवस्थापिका सभा से अपने को स्वतन्त्र नहीं समझते। यही वजह है कि धारासभा को बहुत ही सोच-विचार कर कानून बनाने चाहिये। यह तभी सम्भव है जब योग्य और शिक्षित व्यक्ति धारासभाओं में भेजे जायँ। नागरिकों का

कर्तव्य है कि चुनाव के समय वे उन्ही व्यक्तियों को वोट दें जो अधिक से अधिक जनता के हित का ध्यान रखते हों। जब तक धारासभाओं में योग्य और हितैपी व्यक्ति न जायेंगे तब तक राज्य की उन्नति नही हो सकती। लोकहित की रक्षा के लिये धारासभाओं में सच्चे जनसेवक जाने चाहिये।

व्यवस्थापिका सभा में दो सभाएँ (Two branches of Legislature,)—इस सभा का कार्य इतना व्यापक है कि लगभग सभी देशों मे इसके दो हिस्से किये गये है। इन दोनो हिस्सों के नाम अलग-अलग देशों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के है। अमेरिका मे एक को सिनेट और दूसरे को हाऊस आफ रिप्रेजेंटेटिव्ज (House of Representtives) कहते है। फ्रांस मे एक को सेनेट तथा दूसरे को चेम्बर आफ डिप्युटी (Chamber of Deputy) कहते है। हमारे देश म नये शासन विधान (Act of 1935) के अनुसार वाइसराय की धारा सभा मे एक का नाम कौन्सिल आफ स्टेट और दूसरे का फेडरल असेम्बली है। इसी शासन विधान के अनुसार सात प्रान्तों मे दो सभाओं का नियम जारी किया गया है।

कार्य कारिणी सभा (Executive) कार्यकारिणी सभा से सरकार के उस अ ग का तात्पर्य है जो शासन को कार्यान्वित करता है। यह धारा सभा के बनाये हुए कानूनों की देख रेख करता है। वास्तव मे देश का शासन कार्यकारिणी सभा ही करती है। शासन के दैनिक जोवन मे इसी अंग का हाथ सब से अधिक होता है। व्यवस्थापिका सभा और न्यायसमिति से इसका सीधा सबंध होता है। जो कानून को भग करता है वह कार्यकारिणी सभा द्वारा दोषी ठहराया जाता है। और तब न्याया-

साय उसे दंड देते है। लीकाक लिखता है, "कार्यकारिणी सभा से उन सरकारी अफसरों से मतलब है जिनका काम सरकारी कानूनो का पालन कराना है।" गिलक्रास्ट लिखता है "कार्य-कारिणी सभा सरकार का वह अंग है जो कानूनी ढंग पर जनता की राय का पालन कराता है।" वास्तव में कार्यकारिणी सभा कोई सभा नही है। बादशाह से लेकर छोटा से छोटा कर्म-चारी इसके अंतर्गत गिना जाता है। धारासभा कभी-कभी मिलती है, लेकिन कार्यकारिणी सभा हर समय अपना काम करती है। हमारे देश मे राष्ट्रपति से लेकर एक मामूली चौकी-दार तक कार्यकारिणी विभाग का सदस्य है। कार्यकारिणी सभा के दो अर्थ होते है। एक तो देश के सब से प्रधान तथा उसके सहायकों से दूसरा कार्यकारिणी महकमे के सभी कर्मचारियों से। इगलैंड मे प्रधान मंत्री और केबिनेट के सभी सदस्यों को कार्यकारिणी सभा से सूचित किया जाता है। कभी-कभी इसका अर्थ कर्मचारियो से भी होता है। अमेरिका मे प्रेसिडेंट और केबिनेट को कार्यकारिणी सभा कहा जाता है।

कार्यकारिणी सभा का संगठन (Constitution of a Cabinet) केवल बादशाह अथवा प्रेसिडेंट को कार्य-कारिणी कहना ठीक नहीं है। किसी मानी में वे इसके प्रधान कहे जा सकते है। कुछ देशों मे सारी शक्ति मंत्रिमंडलों के हाथ मे केन्द्रीभूत होती है। इगलैन्ड, फ्रान्स तथा आस्ट्रेलिया मे सारी शक्ति केबिनेट के हाथों मे होती है। यह केबिनेट उस पार्टी के सदस्यों से बनाई जाती है जिसका धारासभा मे बहुमत होता है। इसके सदस्य जो मंत्री कहलाते है तब तक कार्य कर सकते हैं जब तक धारा सभा का इसमे विश्वास होता है। धारासभा अविश्वास का प्रस्ताव पास कर मंत्रिमंडल को खतम कर

सकती है। और नये मंत्रियों को उनकी जगह बुला सकती है। मंत्रिमडलों मे यह रिवाज सा हो गया है कि सब की जिम्मेवारी सम्मिलित समझी जाती है। कोई मंत्री गलती करता है तो सारा मंत्रिमडल उसके लिये जिम्मेवार ठहराया जाता है। एक मंत्रि इस्तीफा देता है तो पूरे मन्त्रिमडल को हटना पड़ता है। मंत्रिमडल का प्रत्येक सदस्य किसी न किसी विभाग का प्रधान होता है।

केबिनेट से पार्टी प्रथा की नींव पड़ी है। हर पार्टी इस बात की कोशिश करती है कि वह केबिनेट पर अपना अधिकार जमाये। अमेरिका मे केबिनेट का सगठन किसी और प्रकार का है। वहाँ पर प्रेसिडेंट स्वयं मन्त्रियों को चुनता है और जब चाहे उन्हे हटा सकता है। व्यवस्थापिका सभा का उसमे कोई हाथ नही होता। यहाँ भी मन्त्रियों को एक-एक विभाग सौंप दिया जाता है। वास्तव मे यही केबिनेट सारा काम करती है। राज्य के सारे कर्मचारी इसी की मातहती मे काम करते हैं। सरकार की बागडोर इसी के हाथ मे होती है।

कार्यकारिणी के कर्तव्य (Duties of the Executive)—न्याय समिति के कर्मचारियो और धारा सभा के सदस्यों को छोड़कर बाकी सभी सरकारी कर्मचारी कार्यकारिणी के सदस्य माने जाते है। यह बात दूसरी है कि किसी का दर्जा बड़ा होता है और किसी का छोटा। सरकार के इस अंग का कर्तव्य वही है जो राज्य का कर्तव्य कहा जाता है। देश मे शांति रखना, जान-माल की रक्षा करना, विदेशियों के आक्रमण से देश को बचाना, शिक्षा का प्रचार करना, कारोबार की वृद्धि करना, कानूनों की रक्षा करना, राज्य की हर प्रकार से बेहतरी

करना, इत्यादि इत्यादि कार्यकारिणी के कर्तव्य कहे गये हैं। इन कामों को मोटे तौर पर आठ या दस विभागों में बाँट दिया जाता है। हर विभाग एक मन्त्री के हवाले कर दिया जाता है। नीचे से ऊपर तक सभी कर्मचारी अपने विभाग की मातहती मे काम करते है। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, विदेशी विभाग, फौज तिजारत, इमारत, पोस्ट आफिस और तार, आवागमन, तथा मजदूर आदि अलग-अलग विभाग होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर नये विभाग बना लिये जाते है।

कार्यकारिणी विभाग (Departments of the Executive) कार्यकारिणी विभाग मे सरकार के सबसे अधिक कर्मचारी काम करते है। इनमे बड़े अफसर से लेकर छोटा से छोटा चपरासी तक आ जाता है। बड़े-बड़े अफसरों को जो अमूमन सिविल सर्विस के सदस्य होते है, सरकार स्थाई रूप से भर्ती करती है। इनकी भर्ती के लिये एक सरकारी महकमा होता है जो पब्लिक सर्विस कमीशन कहलाता है। राज्य के लगभग सभी कर्मचारी इसी कमीशन द्वारा नियुक्त किये जाते है। उनकी जगह स्थाई समझी जाती है। सरकार बदलती रहती है, लेकिन ये कर्मचारी अपना-अपनी जगह काम करते रहते है। छोटे-छोटे कर्मचारियों की नियुक्त 'कमीशन' की ओर से नही हो ी। इसलिये वे किसी भी समय अलग किये जा सकते हैं। अमेरिका मे एक विचित्र प्रथा है जो दुनिया के किसी हिस्से मे नही पाई जाती। जब कोई नया प्रेसिडेन्ट चुना जाता है तो वह पिछले सभी कर्मचारियों को निकाल कर अपनी पार्टी के नये-नये कर्मचारी भर्ती कर लेता है। परिणाम यह होता है कि सरकारी कर्मचारी अपने आपको स्थाई नही समझते। उन्हे इस बात का भय रहता है कि मालूम नहीं किस पार्टी का प्रेसिडेन्ट

चुना जायगा। इस प्रथा को विनाश नीति (Spoil Systum) कहते हैं। इससे सबसे बड़ी दो हानियाँ होती है। एक तो सरकारी काम मे बाधा पड़ती है, दूसरे कितने ही व्यक्ति बेरोजगार हो जाते है।

इस विभाग के अतर्गत पुलीस, कलेक्टर, कमिशनर, डाक्टर, इजीनियर आदि कर्मचारी गिने जाते है। सरकार का गुप्तचर विभाग कार्यकारिणी के ही अदर गिना जाता है। यद्यपि यह विभाग कानून बनाने का अधिकारी नही है और न अपनी इच्छा से प्रजा से एक पैसा वसूल कर सकता है, फिर भी इसकी जिम्मेदारी कम नहीं होती। प्रजा के घनिष्ठ संपर्क में आने का अवसर इसी विभाग के कर्मचारियों को प्राप्त होता है। यदि ये नेक और ईमानदार है और नागरिकों के साथ सज्जनता का व्यवहार करते है तो राज्य मे अधिक से अधिक प्रसन्नता रह सकती है। इसके विपरीत यदि लोभी ओर निर्दयी हैं तो वे प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार करेगे। घूस लेंगे, और निरपराध व्यक्तियों पर मुकद्दमे चलाएँगे। इसीलिये कार्यकारिणी विभाग बहुत ही सुसंगठित और पवित्र होना चाहिये जिससे यह प्रजा पर अत्याचार न कर सके। इन्हे वेतन भी अधिक मिलना चाहिये ताकि प्रजा से अनुचित ढंग से इन्हे पैसे लेने की आवश्यकता न हो।

न्यायसमिति—(Judiiary) सरकार का तीसरा अंग न्यायसमिति है। जिस राज्य मे न्याय नही किया जाता वहाँ प्रजा असन्तुष्ट रहती है। सरकार का कर्तव्य है कि वह उचित अनुचित का ध्यान रखे। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन

न करे उसे उचित द ड देना ही न्याय है। यह विभाग अपराधियों को द ड देता है। न्याय विभाग के कर्मचारी इस बात का फैसला करते हैं कि किस अपराधी को कितना द ड मिलना चाहिये। यदि राज्य म अपराधियों को द ड न दिया जाय तो शाति कायम नहीं रह सकती। द ड देने के लिये न्याय विभाग के कर्मचारियो को स्वत त्र और निष्पक्ष होना चाहिये। जजों के ऊपर किसी तरह का बेजा दबाव नहीं पड़ना चाहिये। न्याय करते समय ऊँच-नीच, छोटे-बडे का फरक नहीं करना चाहिये। बडे से बडे सरकारी अफसर को भी यदि वह अपराधी ठहराया जाय तो वही द ड मिलता है जो गरीब से गरीब नागरिक को उसी अपराध पर दिया जाता है। कितने ही गुनाहों मे सरकार तक को जुर्माना देना पडता है। न्याय के ही बल पर राज्य कायम रह सकता है। अफलातून (Plato) का कहना है, "न्याय मनुष्य के मस्तिष्क का सब से बडा गुण है।" द ड नागरिक की भलाई के लिये दिया जाता है। इसलिये कचहरियों मे अनुभवी जज होने चाहिये ताकि वे अपराधों की तह पेच को अच्छी तरह समझ सके।

न्यायसमिति का स गठन— Constitution of the Judiciary) सरकार का न्याय विभाग सीढी की तरह नीचे से ऊपर तक सगठित है। हमारे देश में सब से छोटी कचहरी गाव का पचायत अदालत कहलाती है। गाव के छोटे मोटे मुकदमे इसी के द्वारा फैसल किये जाते हैं। आठ या दस गावो की एक पचायत अदालत रहती है। पचायत मे आमतौर से पाच या सात आदमी होते हैं। इसका सभापति सरपच कहलाता है। पचायत के ऊपर तहसील होती है। फिर जिले की छोटी और बडी अदालतें

होती है । इसके वाद हाईकोर्ट होती है । यह हमारे देश की सब से बड़ी अदालत है । १९३५ के शासन-विधान के अनुसार एक फेडरल न्यायलय स्थापित किया गया था, जिसे २६ जनवरी सन् १९५० से पश्चात् 'उच्चतम न्यायालय' (Supreme Court) का पद प्रदान किया गया है। लेकिन इसका मुख्य काम शासन संबधी कठिनाइयों को दूर करना तथा दो राज्यों के झगड़ों को फैसला करना है ।

कचहरियों में जितने मुकदमे आते है वे दो प्रकार के होते है । एक तो माल के मुकदमे (civil cases) और दूसरे जान या अपराध के (Criminal cases) । इसलिये कानून भी दो प्रकार क है। फौजदारी के कानून और माल के कानून । न्यायालयो मे इन दोनों प्रकार के कानूनों का उपयोग किया जाता है । अमेरिका की सबसे बडी कचहरी प्रधान न्यायालय कहलाती है । वहाँ का प्रेसीडेंट जजों को नियुक्त करता है । सभी देशो मे न्याय विभाग का प्रधान, कार्यकारिणी का कोई सदस्य होता है । लगभग सभी सभ्य देशों मे जूरी [Jury] की प्रथा है। न्यायाधीशों की सहायता के लिये ५ या ७ व्यक्ति आम जनता मे से चुन लिये जाते है । कुछ मामलों मे वे अपनी राय न्यायाधीश को देते है । हमारे यहाँ भी जूरी की प्रथा है ।

आदर्श न्याय विभाग (An ideal Judiciary)—निष्पक्षता न्याय की कसौटी है । जिस न्यायालय मे कोई भेद भाव नही किया जाता और कानून के आधार पर लोगो को उचित दंड दिया जाता है वही इन्साफ कर सकता है । न्याया-लयो का कर्त्तव्य केवल दंड देना नहीं बल्कि उचित और अनुचित मे फरक करना है । जहाँ अनुचित ढग से कोई व्यक्ति किसी

दूसरे का हक छीन लेता है वहाँ न्यायालय ठीक मार्ग पर उसे लाने का प्रयत्न करते है। आदर्श न्याय के लिये आदर्श व्यक्तियों की आवश्यकता है। आदर्श व्यक्ति अच्छे वातावरण मे उत्पन्न होते है। इसलिये शिक्षा का प्रचार राज्य का मुख्य कर्तव्य ठहराया गया है। जजों को इतनी अधिक तनख्वाह दी जायँ कि उन्हे अपने भरण पोषण के लिये औरों पर भरोसा न करना पड़े। राज्य के किसी विभाग का कर्मचारी न्याय विभाग के कामो मे दखल न दे। जजों को कानून के अलावा किसी प्रकार की सिफारिश सुनने से इन्कार कर देना चाहिये। उनके दिल मे जो निष्पक्ष भाव से बात बैठे उसी की सहायता से फैसला दे। देश, काल और पात्र का ध्यान न्यायालयों को रखना चाहिये। जजों को कोमल और कठोर दोनों होना चाहिये। सख्त से सख्त दंड देने में उनका हृदय पिघलना नहीं चाहिये।

न्याय तभी हो सकता है जब कानून सुलझे हुए हों। यदि कानून साफ नही है और उसका कई अर्थ लगाया जा सकता है तो ठीक ठीक इन्साफ नहीं हो सकता। इसलिये व्यवस्थापिका सभा का कर्तव्य है कि वह कानूनों को जितना हो सके स्पष्ट करके न्यायालयों को दे। सरकार का अंग अकेले तब तक कोई ठीक काम नही कर सकता जब तक बाकी अंग अपने कर्तव्यों का पूरा पालन न करें। यदि कार्यकारिणी बेगुनाह लोगों को फँसा कर न्यायालयों मे पेश करेगी तो जजों को इन्साफ करने मे कठिनाई होगी। कितने ही निरपराध व्यक्ति जेलों मे भेज दिये जायँगे। इसलिये आदर्श न्याय विभाग के लिये जजों की निष्पक्षता और स्वतन्त्रता के अतिरिक्त आदर्श कार्यकारिणी तथा आदर्श व्यवस्थापिका सभा की आवश्यकता है।

न्यायाधीश और कानून (Judge and Law)—

व्यवस्थापिका सभा कानून बनाने मे कितना ही सावधान क्यो न रहे थोड़ी बहुत कमी का रहना अनिवार्य है। कानूनों के दो दो तीन तीन अर्थ लगाये जाते है। कुछ ऐसे भी मुकदमे न्यायालयो मे आ जाते है जिनके लिये उचित कानून का कोई विधान नही रहता। कारण यह है कि व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों को मतभेद के सारे पहलुओ का ज्ञान नही होता। यह मनुष्य की शक्ति मे बाहर भी है। इसलिये जज को इन कठिनाइयों का सामना करना पडता है। वह अपनी बुद्धि का प्रयोग इन अवसरों पर करता है। जब एक कानून के कई अर्थ लगाये जाते है तो उसी अर्थ का वह प्रयोग करता है जो उसकी बुद्धि मे सबसे उचित होता है। कभी कभी तो लट्ठे और लकडी मे उसे फरक करना पडता है। ऐसे भी अपराध सामने आ जाते है जिनके लिये कोई कानून नही होता। ऐसी दशा मे जज यह नही कह सकता कि वह इसका फैसला नही करेगा, क्योंकि कानून की कमी है। उसे कोई न कोई मार्ग निकालना पडता है। ऐसे अवसरों पर वह कुछ तो अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है। और कुछ अन्य कानूनो का। इन दोनों का परिणाम यह होता है कि एक ओर तो कानून का मतलब साफ होता है और दूसरी ओर नये नये कानून बनते जाते है। न्यायालयों मे कितने ही नये नये कानून बनते रहते है। इसका अर्थ यह नही है कि न्याय विभाग विधान मण्डलों के अधिकार का दुरुपयोग करता है बल्कि उसे विवश होकर ऐसा करना पडता है। विधान मण्डल इसे बुरा नही मानती। लगभग सभी देशों मे इस प्रकार के कानूनों का प्रचार है। ये कानून अधिक सुलझे हुए और साफ होते है, क्योंकि जजों के वर्षों के अनुभव के बाद बनते है। साथ ही कार्य रूप मे इन्हे परिणत करना रहता है। इन कानूनों को न्यायाधीशो का कानून (judge made-law) कहते है।

अध्याय १०

सरकार और कानून

Government and Law

कानून का तात्पर्य—कानून की परिभाषा विद्वानो ने कई प्रकार से की है। कुछ लोग इसे स्वतन्त्रता की कुंजी और कुछ बधन कह कर पुकारते है। रोम का विद्वान सिसरो लिखता है, "हम लोग स्वतत्र होने के लिये कानून के बधन मे पड़े हुए है।" सिसरो के इस वचन मे बड़े मार्के की बात यह है कि कानून स्वतन्त्रता और बधन दोनो की कुंजी है। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि कोई एक दूसरे को किसी प्रकार से हानि न पहुँचाये और हर आदमी अपने अधिकार की सीमा को पहचाने। इसीलिये कानून को अधिकार का दर्शन शास्त्र कहते है। कानून से राजा और प्रजा के अधिकार स्पष्ट किये जाते है। सरकारी कर्मचारी इन्हीं कानूनो द्वारा अपना कर्तव्य पालन करते है। प्रजा के प्रतिनिधि स्वयं इन कानूनों को बनाते है। इसी लिये कहा जाता है कि प्रजातत्र के अदर जनता स्वय अपना शासन करती है। जो किसी के अधिकार मे दखल देता है वह कानूनों द्वारा दोषी ठहराया जाता है। अथवा जो अपने कर्तव्य का पालन नही करता उसे कानूनो द्वारा दंड दिया जाता है जब कभी हम अपने कर्तव्य को भूल कर गलत मार्ग ग्रहण कर लेते है, तो कानून हमे ठीक रास्ते पर लाते है। ये उसी के लिये बंधन है जो अपने कर्तव्य का पालन नही करता। जो सदाचारी है और अपने कर्तव्य से विचलित नही होते उन्हे यह हर प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान करते है। इसी लिये एक विद्वान ने कानून को "मनुष्य के मस्तिष्क से निकली हुई अमूल्य वस्तु" ठहराया है। मनुष्य का

उच्च विचार कानूनों के अंदर छिपा हुआ है। सभ्यता के इतिहास पर कानून का गहरा असर पड़ता है।

कानूनों की उत्पत्ति और विकास (Origin and development of law)—कानून की उत्पत्ति मनुष्य की आवश्यकता के कारण हुई। यदि उसकी सभी आवश्यकताएँ एकाकी जीवन में पूरी हो जायँ तो उसे समाज में रहने की आवश्यकता न होगी। लेकिन यह विचार गलत है। मानवता का विकास समाज के बाहर कदापि नहीं हो सकता। समाज में व्यक्ति इसी अभिलाषा से प्रवेश करता है कि अधिक से अधिक उसकी उन्नति होगी। उसे औरों के अधिकार और अपने कर्तव्य का ज्ञान होता है। इसके स्पष्टीकरण के बिना वह सभ्यता का स्वप्न नहीं देख सकता। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि उसने अमुक अपराध इसलिये किया है कि उसे इसका ज्ञान नहीं था। कानून की अज्ञानता बचाव का कारण नहीं है। राष्ट्रीय कानूनों के अतिरिक्त कुछ अंतर्राष्ट्रीय कानून भी बनाये गये हैं। देशों के सम्बन्ध मे वृद्धि होने के कारण सरकार को अपने पड़ोसी राष्ट्रों का ध्यान रखना पड़ता है। युद्ध, संधि, व्यापार आदि कार्यों में अंतर्राष्ट्राय कानूनों का पालन किया जाता है। चूँकि अंतर्राष्ट्रीय संगठन अभो अधूरा और कमजोर है, इसलिये अंतर्राष्ट्रीय कानून भी अपूर्ण है। उनके पीछे कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो दृढ़तापूर्वक उनका पालन कराये। उनकी दशा इस समय वैसी ही है जैसो आरम्भ मे सामाजिक नियमों की थी।

मनुष्य का असली स्वभाव ज्यों-ज्यों जाहिर होता गया और उसकी अच्छी तथा बुरी हरकतें मालूम होती गईं, त्यों-त्यों विभिन्न प्रकार के कानून बनते गये। बढ़ते बढ़ते इनकी संख्या अनगिनत हो गई। कुछ दूर चलकर इन्हे दो भागों मे बाँट

दिया गया—दीवानी और फौजदारी कानून। माल से सम्बन्ध रखने वाले दीवानी कानून कहलाये और लडाई झगड़े से सम्बन्ध रखने वाले फौजदारी कानून। यह विभाजन आज भी माना जाता है। मनुष्य का विश्वास है कि इससे उनके कर्तव्य का पालन और स्वतन्त्रता की रक्षा होती है। यह बात गलत है कि ससार मे "मात्स्यन्याय" (Might is Right) होना चाहिये। प्रकृति के अंतर्गत होते हुए भी मनुष्य उसका गुलाम नही है। प्रकृति पर अधिकार करने का प्रयत्न उसकी सभ्यता का विकास है। विज्ञान की उन्नति से स्पष्ट है कि निरा प्राकृतिक जीवन जगली जीवन है। यद्यपि कानून बधन है और वे पग-पग पर हमे रोकते है फिर भी यह रुकावट हमारी भलाई के लिये है। मनुष्य की पाशविक शक्ति को रोकने का एकमात्र श्रेय कानूनों को है। इससे गरीबों तथा कमजोरों की रक्षा होती है।

कानूनों का महत्त्व (Inportance of Law)—कानून किसी को परेशान करने के लिये नही बनाये गये हैं। इनका उद्देश्य देश मे शाति रखना है। यदि कोई व्यक्ति जगल या पर्वत की गुफाओं मे अकेले निवास करे तो उसे किसी नियम की आवश्यकता न होगी। न तो वह किसी को दबा सकता है और न कोई उसे हानि पहुँचा सकता है। परन्तु समाज में ऐसी बात नही है। यहाँ तो हजारो आदमी एक साथ रहते है। हर काम मे एक दूसरे की आवश्यकता पडती है। इतने आदमियों को जब साथ साथ रहना है तो कुछ नियम भी आवश्यक हैं। इसीलिये धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक नियम बनाये गये हैं। राजनैतिक नियमों को ही कानून कहते हैं। इनका निर्माण धर्म और समाज के अनुसार किया जाता है।

जहाँ हजारों आदमियों का रात दिन सम्पर्क है वहाँ आपस में मत भेद भी होगा। सभव है दो व्यक्ति लड़ भी जायँ। हो सकता है किसी सपत्ति के लिये दो दो, चार चार दावेदार खड़े हो जायँ। यह भी मुमकिन है किसी सीधे सादे भले मानुस व्यक्ति को कोई मूर्ख और बलवान दबाने की चेष्टा करे। हर आदमी को किसी न किसी मर्यादा के अ दर रह कर काम करना चाहिये। न हम किसी की स्वतत्रता मे बाधा डाले और न दूसरा ही हमारी आजादी को रोके। इन तमाम बातो के लिये सरकार को नियम बनाने पडते है। इनकी देख रेख के लिये पुलीस और फौज तक रखनी पडती है। समाज मे अच्छे और बुरे सभी प्रकार के लोग रहते है। नियम पूर्वक जीवन व्यतीत करना प्रत्येक की उन्नति के लिये आवश्यक है। लेकिन अधिकतर लोग इस नियमित जीवन के महत्त्व को नहीं समझते। वे दूसरो को अकारण तग करते है; उनका धन छीन लेते हैं और उनकी उन्नति मे रुकावटे डालते है। इन्ही व्यक्तियों को सही रास्ते पर लाने के लिये कानून बनाने पडते है। यदि सभी मनुष्य अपने अपने कर्तव्यो को समझने लगे और कोई किसी को हानि न पहुँचाए तो कानून की कोई आवश्यकता नही है। उस दशा मे कचहरियो, पुलीस, थानों आदि की भी जरूरत न होगी, परन्तु समाज मे ऐसा होना स्वप्न की बात है। जब तक मनुष्य के अ दर विकार है तब तक उन्हे रोकने के लिये कानून जरूरी है।

कानून आर्थिक और सामाजिक नियम है। जिनकी सहायता से मनुष्य समाज मे अपना जीवन निर्वाह करता है। यदि व्यक्तिगत सपत्ति की प्रथा न हो तो स्वार्थ की कमी के कारण इनकी आवश्यकता जाती रहेगी।

कानूनों का पालन (Obedience of Law —कानूनो का पालन लोग कई दृष्टियों से करते है। जो शिक्षित और समझदार है वे समाज की मर्यादा के लिये इनका पालन करते है। वे जानते है कि दूसरो को कष्ट पहुॅचाना दोष है और नियमों को पालना समाज की उन्नति के लिये जरूरी है। इसलिये वे कानूनो की इज्जत करते है। और प्रत्येक दशा मे इनका पालन करते है। वे जानते है कि यदि वे चोरी करेंगे या किसी को मारेंगे तो पुलीस उन्हे गिरफ्तार करेगी और जेल भोगना होगा। इसी डर के कारण जल्दी किसी कानून को नही तोडते। लेकिन जब उन्हे मौका मिलता है तो वे इन्हे भग भी करते है। कुछ लोग अपने स्वभाव के कारण इनका पालन करते है। मनुष्य अनादि काल से समाज मे रह रहा है। सैकडो तरह के नियमो का उसे पालन करना पडता है। नियम पालन उसका स्वभाव बन गया है। सरकारी कानूनो को मानने मे उसे कोई कठिनाई नही होती। इन्ही तीन कोटियो मे समाज के सपूर्ण व्यक्ति आ जाते है। कानूनों का पालन सब को करना पडता है। जो ऐसा नही करते उन्हे दड दिया जाता है।

दंडविधि (System of Punishments)—कोई बडे से बडा अपराध क्यों न करे कचहरियो के अतिरिक्त किसी सरकारी कर्मचारी को उसे दड देने का अधिकार नही है। अपराधी कचहरी मे न्यायाधीश के सामने लाया जाता है। उसके अपराध पर विचार होता है। पक्ष और विपक्ष दोनो पहलुओं को सोचकर अपराध सावित होने पर कानून के अनुसार दड दिया जाता है। दड देने का अर्थ यह नही है कि अपराधी को परेशान करने के लिये ऐसा किया जाता है। दड का उद्देश्य सुधार है। कोई विचारवान मनुष्य कानून को जल्दी नही तोड़ता।

यह बात स्वतः सिद्ध है कि जो कानूनों को तोडते है वे या तो उतावलेपन में आकर ऐसा करते हैं अथवा अज्ञानतावश, दोनों दशाओं मे उनकी कमजोरी है। इसी कमजोरी को दूर करने के लिये कचहरियाँ दंड देती हैं। दंड से एक प्रकार की चेतावनी दी जाती है कि भविष्य मे ऐसा नही करना चाहिये। अपराधी दंड पाकर कुछ तो लज्जावश और कुछ चेतावनी के कारण आगे के लिये सुधर जाता है।

दूसरों को बता देने के लिये भी अपराधी को दंड दिया जाता है। जब किसी चोर या दुष्ट को सजा मिलती है तो दूसरे सचेत हो जाते है और जल्दी कानूनों को नही तोड़ते। इसी उदाहरण के लिये प्राचीन काल मे सजाएँ बहुत ही सख्त दी जाती थीं। अपराधी के हाथ पैर काट लिये जाते थे। आम जनता के सामने उसे फाँसी दी जाती थी। परन्तु वर्तमान समय मे ऐसा नही किया जाता। केवल जान से मारने के अपराध में फाँसी दी जाती है। अगभग का दंड बिलकुल नही दिया जाता। आजकल दंड का एकमात्र उद्देश्य यह है कि अपराधी अपनी गलतियों को महसूस करे और भविष्य मे फिर ऐसा न करे। यही होना भी चाहिये। बुरे से बुरे मनुष्य का सुधार किया जा सकता है। समाज सोच-विचार कर लोगों को ऐसी शिक्षा दे और उनके अदर ऐसे भाव पैदा करे कि वे कानूनों के महत्त्व को समझे। अपराध एक बीमारी है और उसकी दवा हो सकती है। जेल अपराधियों के अस्पताल है। सरकार को समाज मे कुछ ऐसे कार्य करने चाहिये जिससे अपराधियों की सख्या कम होती जाय।

अध्याय ११

राष्ट्रीयता और लोकहित

Nationalism and Social-welfare

राष्ट्र (Nation)—भारतवर्ष एक राष्ट्र है। जिस देश मे कुछ व्यक्ति निवास करते हो उनका एक राजनैतिक सगठन हो और उनके अन्दर सहयोग की भावना हो उसे राष्ट्र कहते है। राष्ट्र और राज्य पर्यायवाची शब्द हैं। लेकिन राष्ट्र बनने के लिये कुछ और भी शर्तें है। साधारण बोल-चाल में राज्य और राष्ट्र मे कोई भेद नहीं किया जाता परन्तु शास्त्र की दृष्टि से राष्ट्र शब्द अधिक गभीर और भावपूर्ण है। किसी देश मे एक सगठित सरकार के होते हुए भी राष्ट्रीय जीवन का अभाव हो सकता है। जिस देश के निवासी सरकारी कानूनों के भय से शॉत हैं और उनमे सामाजिक उन्नति दिखलाई नहीं पडती वह देश राष्ट्र नही कहला सकता। राष्ट्र कहलाने का अधिकारी वही देश है जिसमे एक घनिष्ठ सामाजिक जीवन हो, लोगों के अन्दर बन्धुत्व का भाव हो और अपने देश के लिये वे व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़ने पर तैयार हो। जब देश के निवासी अपने पडोसी को अपना भाई समझे और देश के लिये सब कुछ त्याग करने के लिये तैयार हो तो हम कह सकते है कि उस देश मे राष्ट्रीय जीवन है।

जितने भी उन्नतिशील देश है उन सब मे राष्ट्रीय भावना दिखलाई पड़ती है। वहॉ के निवासी अपने देश को अपना घर समझते है। देश के नाम पर वे मर मिटने को तैयार रहते हैं। उनके सिद्धॉत को हम भले ही पसन्द न करे लेकिन अपने देश के

लिये उनका त्याग और आत्मसमर्पण सराहनीय है। जर्मनी और जापान की सरकारी नीति हमें पसन्द नहीं है। इन देशों ने जितनी बेरहमी और स्वार्थपरता से संसार को अशांत बना रखा है उसकी हम कड़े से कड़े शब्दों मे निन्दा कर सकते हैं। परन्तु इन देशों के नागरिकों के उत्साह और उनकी लगन की सराहना किये बिना हम नही रह सकते। अपने देश के गौरव के लिये वे सब कुछ करने पर तैयार है। इसी भावना को राष्ट्रीय भावना कहते है। ब्रिटेन मे भी यह भावना कम नही है। अपने देश के लिये ब्रिटेन निवासियों ने समय समय पर जो आत्मत्याग किया है वह हमारे लिये अनुकरणीय है। भारतवर्ष मे अभी इतनी ऊँची राष्ट्रीयता का अभाव है।

राष्ट्रीय जीवन (National Life)—जब देश के निवासी शिक्षित और सभ्य होकर अपने देश की उन्नति की चिंता करते है तो उनका जीवन कुछ और ही प्रकार का दिखाई पड़ता है। उनके सभी कामों मे सेवा और त्याग की झलक होती है। उनकी रहन-सहन से बहुतों को लाभ पहुँचता है। वे अपने ही देश की बनाई हुई चीजें इस्तेमाल करते हैं। देश की समस्याओं पर विचार करने के लिये वे हर समय तैयार रहते हैं। वे इस बात का प्रयत्न करते रहते है कि गरीबी, बेकारी, अशिक्षा, साम्प्रदायिकता आदि रोग उनके देश से निकल जॉय। अपनी आमदनी का कुछ भाग वे देश की उन्नति मे खर्च करते है। अपने देशवासियो की तरक्की के लिये तरह तरह की संस्थाओं की स्थापना करते है। सामाजिक कमज़ोरियों को दूर करने के लिये वे नाना प्रकार के सुधार करते है। जिस देश के निवासियों का जीवन इस तरह के कामों से ओतप्रोत हो वही उन्नतिशील राष्ट्र कहलाने का अधिकारी है। उन्ही का जीवन राष्ट्रीय जीवन

कहलाता है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने देश को अपना घर और अपने देशवासियों को अपना भाई समझता है।

यदि सच्चाई के साथ विचार करें तो भारतवर्ष के निवासियों का जीवन राष्ट्रीय जीवन नहीं है। हम अपने देश की बनी हुई चीजें काम में न लाकर विदेशी चीजें खरीदते हैं। इससे भली-भाँति स्पष्ट है कि हम अपने देशवासियों को भूखा रख कर अपनी कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा विदेशों में भेज देते हैं। यदि हमें अपने देश के बेकार और गरीब भाइयों की थोड़ी भी चिन्ता होती तो हम मुफ्त में भी विदेशी चीजें न लेते।

हमारे देश की जनसंख्या, ४० करोड़ के लगभग है। चीन को छोड़कर इतना बड़ा देश इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। प्रकृति ने इस देश को सुख और वैभव के इतने साधन दे रखे हैं कि विदेशी भी मुक्तकंठ से इसकी प्रशंसा करते हैं। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर लिखता है, "यह हिन्दुस्तान एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें चारों ओर से सोना और चाँदी आ-आ कर जमा होता है, लेकिन इसके निकलने का एक भी रास्ता नहीं दिखाई पड़ता।" इतना सुरक्षित और समृद्धशाली देश गत १५० वर्षों से गुलाम था। इसका एकमात्र कारण यहाँ के निवासियों में राष्ट्रीय जीवन का अभाव था।

राष्ट्रीयता के अंग—(Essentials of Nationalism) राष्ट्रीयता कोई ऐसी चीज नहीं है जो एक व्यक्ति चन्द वर्षों में पैदा करता है। यह एक भावना है जो सदियों में बनती है। कुछ ऐसी शर्तें हैं जिनके बिना इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। उन्हीं शर्तों को राष्ट्रीयता का अंग कहते हैं। जैसे राज्य के अंग होते हैं उसी प्रकार राष्ट्रीयता के भी। इनमें से एक की भी अनुपस्थिति में सच्ची राष्ट्रीयता का निर्माण नहीं

हो सकता। इन अंगों के अतिरिक्त कुछ और भी बातें है जो इसकी उन्नति मे सहायक होती है। जब एक बार किसी देश में यह दृढ़ रूप से स्थित हो जाती है तो उसका ह्रास जल्दी नही होता। इन अंगों मे निम्नलिखित मुख्य कहलाते है—

मनुष्य का स्वभाव, धर्म, जाति, भौगोलिक परिस्थिति, भाषा, रस्म-रिवाज, राजनैतिक एकता, एक निश्चित देश, ऐतिहासिक एकता इत्यादि।

राष्ट्रीयता से लाभ (Advantages of Nationalism)—राष्ट्रीयता कोई बुरी चीज नहीं है। इससे स्वदेश प्रेम का भाव प्रगट होता है। जब कोई व्यक्ति अपने को किसी राष्ट्र का अंग मानता है तो उसके अन्दर एक शक्ति मालूम पड़ती है, जो व्यक्तिगत बल से कही अधिक होती है। इससे उसके दिल में एक प्रकार का गौरव उत्पन्न होता है। यह बात निर्विवाद है कि उन्नतिशील देश का निवासी अपने आप को बडा समझता है। उसे अपने देश पर गर्व होता है। राष्ट्रीयता एक प्रकार की एकता है। केवल राजनैतिक एकता से यह उत्पन्न नहीं होती, बल्कि कई क्षेत्रों मे एकता की आवश्यकता पड़ती है। धर्म, भौगोलिक परिस्थिति, भाषा, व्यवसाय, विचार इन सब की एकता की आवश्यकता है। जो देश अपने को राष्ट्र कहने का दावा रखते है उन्हें बहुत ही सगठित और सभ्य होने की जरूरत है। कई बातों के एक होते हुए भी हम दो देशों को एक मच पर नही ला सकते, लेकिन राष्ट्रीयता एक ऐसी चीज है जो न केवल दो व्यक्तियो को बल्कि दो राष्ट्रों को एक मे मिला सकती है। इसी से देश की सस्कृति की रक्षा होती है। किसी देश का अस्तित्व राष्ट्रीयता से कायम रहता है। देश का सच्चा इतिहास उसकी राष्ट्रीयता की कहानी है। सामाजिक सगठन मे जो स्थान जाति

का है वही ससार मे राष्ट्रीयता का है । मै यह मानता हूँ कि वर्तमान राष्ट्रीयता अफीम है, लेकिन इसका असली सिद्धाँत बुरा नहीं है। यदि आज ससार के विभिन्न देश अपनी राष्ट्रीयता को खो वैठे तो न कोई संस्कृति जीवित रह सकती है और न सभ्यता। एक राष्ट्र के रहने वाले व्यक्ति अपने को भाई भाई समझते है और किसी राष्ट्र के मुकाबले मे एक स्वर से तैयार रहते है । जिस देश मे राष्ट्रीयता की लहर है वहाँ के निवासियों मे नया जीवन दिखलाई पड़ता है । जिन्हे अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाने का थोडा भी अभिमान है वे जी-जान से अपनी आन्तरिक कमजोरियों को मिटाने की कोशिश करते है। जैसे धर्म से अ तःकरण की शुद्धि होती है उसी तरह राष्ट्रीयता वीसवी सदी का धर्म है। इससे देश की आन्तरिक बुराइयाँ दूर की जा सकती हैं। इसी भावना ने आज वडे वडे साम्राज्यों को जन्म दिया है। इसी का परिणाम है जो मुट्ठी भर इगलैण्ड के निवासी ५० करोड़ आदमियों पर आज शासन कर रहे थे। इसी के प्रताप ने जापान को एशिया मे सर्वप्रथम स्थान दिया है। इसी की कमी से आज भारतवर्ष गुलाम था। इसी के नाम पर देश की अच्छी कीर्तियाँ विश्व के सामने आती है।

राष्ट्रीयता से हानि (Evils of Nationalism)

राष्ट्रीयता से कुछ ऐसा हानियाँ है जो स्वाभाविक है। उन्हे कोई मिटा नहीं सकता। एक व्यक्ति दूसरे को इसलिये भी भिन्न समझता है कि वह किसी और राष्ट्र का निवासी है। जिस देश मे राष्ट्रीयता की भावना अधिक वढ जाती है वह न केवल अपनी उन्नति चाहता है, वल्कि अन्य राष्ट्रो को कुचलना उसका एक उद्देश्य हो जाता है। आजकल जितने भी वडे वड़े राष्ट्र हैं वे अपनी आमदनी का सव से ज्यादा हिस्सा अस्त्र-शस्त्र वनाने में।

खर्च करते है। इसलिये नही कि उससे ससार की रक्षा होगी, वल्कि इसलिये कि दूसरे राष्ट्र उससे आगे न बढ सके। बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ जो १९वीं और २०वीं सदी मे हुई है, उन सब की जड़ म राष्ट्रायता की भावना थी। राष्ट्रीयता के अन्दर अपनी उन्नति की भावना के साथ दूसरे राष्ट्रों को दबाने का भाव रहता है। इसी के आवेश मे आकर एक देश दूसरे की अच्छी से अच्छी बातों को बुरा ठहराता है। अपने राष्ट्र के विस्तार के लिये न्याय तक को उठाकर ताख पर रख दिया जाता है। सन्धियों की कोई परवाह नही की जाती, लड़ाई के नये नये बहाने खोज निकाले जाते है। इसलिये श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते है कि "राष्ट्रीयता राष्ट्र के लिये सब से घातक है।" वर्तमान राष्ट्रीयता तलवार की शक्ति पर कायम है। कोई व्यक्ति अपने देश की सेवा और त्याग की परवाह नही करता, वल्कि उसको फौजी शक्ति पर गर्व रहता है। आज यूरोप के छोटे और बड़े देशों मे जो कशमकश चल रही है उसका कारण यह भी है कि एक की राष्ट्रीयता नष्ट हो जाय। राष्ट्रीयता आज लड़ाई का एक बहाना बन गयी है। ससार मे सभी व्यक्ति भाई भाई है—ऊपरी फरक केवल प्राकृतिक अन्तर के कारण है—इस प्रकार का विश्वबन्धुत्व तब तक स्थापित नही हो सकता जब तक इस गन्दी भावना का सर्वनाश न होगा। राष्ट्रीयता सगठन की एक सकुचित भावना है। जिस प्रकार किसी गाँव मे केवल एक घर की उन्नति से गाँव भर की उन्नति नही हो सकती उसी प्रकार ससार की उन्नति तब तक सभव नही है जब तक हर देश ऊँचा न उठ जाय। केवल थोडे से राष्ट्र औरो को दबाकर विश्व का कल्याण नही कर सकते।

राष्ट्रीयता की कसौटी (Test of nationalism)

यह सीधा सा सवाल है कि हम राष्ट्रीयता को कैसे पहचानें। कौन सी ऐसी विशेषता है जिससे हम यह कह सकें कि अमुक देश में राष्ट्रीयता है और अमुक मे नहीं। ऊपर जिन अगों को बताया गया है वे किसी भी राष्ट्र के लिये आवश्यक है। लेकिन यह भी देखा गया है कि उनकी अनुपस्थिति मे भी राष्ट्रीयता कायम रह सकती है। एकता राष्ट्रीयता की कसौटी है। जिस देश के लोगों की एक राष्ट्र भाषा है, जिसका एक इतिहास है और जो एक ही राजनैतिक सूत्र मे बँधे हुए हैं वे अपने देश को राष्ट्र कह सकते है। जहाँ एक एक पग पर एकता दिखाई पड़े वहीं राष्ट्रीयता का निवास होता है। विषमता और राष्ट्रीयता मे शत्रुता है। जिस देश में एकता की भावना है और जहाँ के लोग देश के लिये सब कुछ करने को तैयार है वहीं राष्ट्रीयता रह सकती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वहाँ किसी प्रकार की विषमता रहती ही नहीं, विषमता रहती है लेकिन लोगों का ध्यान उसकी ओर न जाकर एकता की ओर जाता है। स्वतन्त्रता राष्ट्रीयता की दूसरी कसौटी है। गुलाम देश राष्ट्र नही बन सकता। जब तक देश का प्रत्येक निवासी अपने अन्दर आजादी महसूस नहीं करता तब तक वहाँ राष्ट्रीयता नहीं आ सकती। जिस देश के निवासियों में इतनी भी शक्ति नही है कि वे अपना शासन स्वयं करे, वे राष्ट्रीयता ऐसी बड़ी चीज को हासिल नहीं कर सकते। इसकी परीक्षा वैसे तो अकसर होती रहती है लेकिन सबसे बड़ी परीक्षा उस वक्त होती है जब देश पर हमला होता है। जब तक बच्चा बच्चा उसका मुकाबिला करने को तैयार है तब तक वहाँ की राष्ट्रीयता सराहनीय है। राष्ट्रीयता की तीसरी कसौटी देशवासियों का त्याग और उनकी आन्तरिक सेवा की भावना है। जिस देश मे अधिक से अधिक सेवक

और त्यागी होते है वहाँ की राष्ट्रीयता दृढ़ होती है। राष्ट्रीयता और देश भक्ति दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। देशभक्ति राष्ट्रीयता का वाह्य स्वरूप है। यह बात असम्भव है कि किसी देश मे राष्ट्रीयता हो किन्तु वहाँ के लोगों में देश के प्रति प्रेम न हो।

एक आदर्श राष्ट्र (An ideal Nation)—हमारे सभी काम किसी लक्ष्य को लेकर ही किये जाते है। जब हम राष्ट्रीय जीवन व्यतीत करना आरम्भ करते है तो हमारा उद्देश्य अपने दश को एक आदर्श राष्ट्र बनाने का होता है। इस आदर्श राष्ट्र की कुछ विशेष पहिचाने है। यदि कोई देश सब से शक्तिशाली हो जाय और वह अपने पडोसी देशों को जीतकर उनकी स्वतन्त्रता नष्ट कर दे तो वह राष्ट्र आदर्श नही कहला सकता। जिस प्रकार एक निरा बलवान मनुष्य आदर्श नही है उसी तरह केवल शक्तिशाली राष्ट्र आदर्श नही हो सकता। एक आदर्श मनुष्य बनने के लिये यह आवश्यक है कि उसके अन्दर अच्छी शिक्षा हो, वह चरित्रवान और कार्यकुशल हो, उसके जीवन से औरों को लाभ पहुँचे तथा उसके अन्दर सयम-नियम दिखाई पड़े। इसी तरह आदर्श राष्ट्र मे भी कुछ गुणों का होना आवश्यक है। उस राष्ट्र मे अशिक्षा, बेकारी और ग़रीबी का नाम भी नहीं रहना चाहिये। वहाँ का प्रत्येक निवासी अपने देश के लिये मरने मारने को तैयार हो। आदर्श राष्ट्र अपने पड़ोसी राष्ट्रों की भी उन्नति का ध्यान रखता है। वह कभी किसी देश पर चढ़ाई नही करता, उसके निवासी सयम और नियम के साथ अपना जीवन व्यतीत करते है। वर्तमान समय मे आदर्श राष्ट्रों का सर्वथा अभाव है। जब तक ऐसे राष्ट्र स्थापित न होंगे तब तक विश्व-शाँति का कोई रास्ता नही निकल सकता।

महात्मा गाँधी सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर हिन्दुस्तान को एक आदर्श राष्ट्र बनाना चाहते थे। कहाँ तक उन्हे इसम सफलता हुई यह सब के सामने है।

लोकहित (Social Welfare)—राष्ट्रीय जीवन मे सभी काम लोकहित के लिये किये जाते है। जिन कामों से दूसरों का भला हो वे लोकहित के कार्य कहलात हैं। मानव जीवन का उद्देश्य यही नही है कि लोग किसी तरह अपना पेट भर ले और ऐश व आराम के साथ अपने घर मे पड़े रहे। इतना तो पशु-पक्षी भी कर लेते है। सवेरे से शाम तक चिड़ियाँ चारे की तलाश मे उड़ती रहती हैं और रात को अपने घोंसले में विश्राम करती है। जब मनुष्य इस बात का दावा करता है कि उसका जीवन अन्य जीवो की अपेक्षा ऊँचा है तो उसके कुछ और भी कर्तव्य हो जाते है। उसे कुछ ऐसे भी कार्य करने चाहिये जिनसे न केवल मनुष्य बल्कि अन्य जीवों का भी कल्याण हो। सभी सार्वजनिक काम लोकहित के कार्य कहलाते है। कुएँ, तालाब, औषधालय, धर्मशालाएँ आदि बनवाना तथा दुखी प्राणियों की सेवा करना लोकहित के कार्य हैं। जिन कामों से दूसरो को लाभ पहुँचे और अपनी आत्मा को शाँति मिले उन्हें लोकहित कार्य कह सकते है। यदि कोई चोर एक धर्मशाला बनवाने के लिये चोरी करता है तो उसका कार्य लोकहित का नही कहला सकता। उसके कार्य से दूसरों को लाभ तो होगा किन्तु उसकी आत्मा को शांति नहीं मिल सकती। कार्य करने की यह नीति समाज के लिये हानिकर होगी।

जिस समाज मे हम रहते है उससे हमे बहुत से लाभ होते हैं। दूसरों की बनायी हुई बहुत सी चीजों का हम प्रयोग करते है। यदि हम सचमुच मनुष्य है तो हमे भी कुछ ऐस कार्य करने

चाहिये जिनसे दूसरों को लाभ पहुँचे। नागरिक शास्त्र हमारा ध्यान इन्ही लोकहित के कामों की ओर आकर्षित करता है। हमे यह नही सोचना चाहिये कि लोकहित के कार्य बेकार हैं, उनसे दूसरों को तो लाभ पहुँचता है; परन्तु हमें कोई फायदा नहीं—ऐसी बात नही है। जिन कामों को हम अपने लिये करते है उनका भी परिणाम आत्म-सतोप ही होता है। भूख को शाँत करने के लिये हम भोजन करते है। मन की शाँति के लिये अपने घर मे रुपये पैसे और तरह तरह की चीजें रखते है। केवल चीजों से हमे कोई फायदा नही होता। फायदा उस शाँति और संतोष में है जो हमे उन चीजों से प्राप्त होता है। लोकहित के कार्य हमें कम सतोप नही देते। जब हम किसी भूखे को एक रोटी और प्यासे को एक गिलास पानी दे देते है तो उस समय हमारी आत्मा मे एक प्रकार की ऊँचाई मालूम पड़ती है। इसी से हमारे व्यक्तित्वका विकास होता है। इसीसे हमारे अन्दर दया, धैर्य, सेवा, त्याग आदि गुणों की नींव पड़ती है।

भारतवर्ष में लोकहित के कार्य (Social welfare in India)—सभी देशों में लोकहित के थोड़े बहुत कार्य होते रहते हैं। जो देश पिछड़े हुए है और जहाँ के निवासियों के अन्दर नागरिकता का अभाव है वहाँ लोकहित के कार्य बहुत कम दिखाई पडते है। इसके विपरीत जो देश उन्नतिशील हैं वहाँ सभी कार्यों में लोकहित की भावना दिखाई देगी। भारतवर्ष का स्थान इन दोनों के बीच मे है। ऐसा नहीं है कि इस देश के निवासी केवल स्वार्थी जीवन व्यतीत करते हैं और न यही है कि इनके अन्दर से स्वार्थ की भावना मिट गयी है और सब के सब आदर्श राष्ट्रवादी कहला सकते है। १९वी सदी के अन्त मे यहाँ के देशवासियों का ध्यान लोकहित के

कार्यों की ओर आकर्षित हुआ। इसका तात्पर्य यह नही है कि प्राचीनकाल से १९ वीं सदी तक लोकहित के कार्यों का अभाव रहा है। हिन्दू मुसलमान दोनों कालो मे लोकहित के जितने कार्य दिखाई पड़ेगे उतने बहुत कम देशों के इतिहास मे नजर आयेगे। उन सब का यहाँ वर्णन करना वर्तमान नागरिकता से दूर हट जाना है। समाजशास्त्र भूतकाल की रहन सहन का हवाला उसी मात्रा मे देता है जहाँ तक वर्तमान जीवन पर उसका प्रभाव पड़ता है। इसीलिये लोकहित के कार्यों की चर्चा और तलाश वर्तमान युग मे ही हमे करनी चाहिये।

१९वी सदी के अन्त मे पूर्वी और पश्चिमी दोनो सभ्यताओ का मिलाप हुआ। लोगों के अन्दर नई भावना, नई रहन सहन और नये विचारों का प्रादुर्भाव हुआ। लोकहित के नये नये कार्य किये जाने लगे। भारतीय समाज मे सामाजिक और धार्मिक सुधार तथा सगठन आरभ किये गये। कुछ समय बाद इन सब के प्रभाव और एकीकरण से राष्ट्रीय आन्दोलन आरभ हुआ। लोकहित के कार्यो मे क्रान्ति की ज्वाला दिखाई पडने लगी। शिक्षा, व्यवसाय, समाज सुधार, सगठन आदि बातों को ध्यान मे रखते हुए नई नई सस्थाओं और आन्दोलनों का जन्म हुआ। यह प्रयत्न अभी तक जारी है। ज्यों-ज्यों इस देश मे राष्ट्रीयता की वृद्धि होती जा रही है त्यों त्यो लोकहित के कार्य भी बढ़ते जा रहे हैं, लेकिन अभी इसकी पूर्ति नहीं हुई है। यह देश इतना विशाल है और सदियों से इतने अन्धकार मे रहा है कि इसे ऊँचा उठाने के लिये और भी बड़े पैमाने मे लोकहित कार्य करने होंगे। यहाँ के देशवासियों मे सेवा और आत्मत्याग की वह भावना जागृत नहीं हुई है जिससे कोई देश उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। अभी इस देश में अनेक

समस्याए पडी हुई है। उनकी ओर लोगों की दृष्टि जानी चाहिये। ९० प्रतिशत व्यक्तियों को शिक्षित करना है, ७५ फी सदी किसान और मजदूरों की रोटी का प्रश्न हल करना है, साम्प्रदायिक भावनाओं को निकाल कर सच्ची राष्ट्रीयता लानी है, गाँव के घरेलू कारोबारों को जीवित करना है तथा दलित जातियों के अन्दर उत्साह और जीवन पैदा करना है। जब तक ये कार्य पूरे नही होते तब तक इस देश के नागरिकों को अधिक से अधिक सख्या मे लोकहित के कार्य में लगना चाहिये।

अध्याय १२

आधुनिक समाज और इसके आदर्श

Modern Society & its Ideals

आधुनिक समाज का कई शक्तियों के समिश्रण से निर्माण हुआ है। इसी के फल स्वरूप इसके आदर्शों पर कई विचार-धाराओं का प्रभाव भी पड़ा है, जिसके कारण अनेकों वादों का जन्म हुआ। इनमे मुख्य-मुख्य आधुनिक विचार धाराएँ प्रजातन्त्रवाद (Democracy) व्यक्तिवाद (Individualism), समाजवाद (Socialism) पूंजीवाद (Capitalism) और गांधीवाद (Gandhism) है।

आधुनिक मनुष्य अपनी उचित आवश्यकताओं की सतुष्टि और पूर्ण स्वतन्त्रता की कामना करता है अतः उसके विचार धाराओं का संबंध आर्थिक दृष्टिकोण से अधिक सबंधित है। इसी आदर्श का प्रभाव भारत पर भी पड़ा है।

भारतवर्ष और चीन मे पिछले कई वर्षों से प्रजातत्रवा

का जोर रहा। यह स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर समाज की उन्नति चाहता है और राष्ट्रीयता की भावना से अन्तर्राष्ट्रीय बोध उत्पन्न कराता है। व्यक्तिवाद प्रत्येक व्यक्ति के सुख की भावना और उन्नति पर विचार करता है। परन्तु व्यक्ति पूर्ण क्षमता तभी प्राप्त कर सकता है जब उसको समाज मे शारीरिक, मानसिक शक्ति बढाने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है। समाजवाद के अनुसार समाज को प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्नति का मार्ग सरल एवम् सुलभ करना है। उसका विचार है कि पूंजीवाद और सामंतवाद ही मनुष्य की अवनति का मुख्य कारण है, अतः उसका मूलोच्छेदन कर डालना चाहिए। पूंजीवाद व्यक्तिवाद की भूमि पर पला है। उसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य को स्पर्धा तथा अपनी मजदूरी को बेचने का अधिकार है। मजदूर मजदूरी करता है। पूंजीपति पूंजी लगाते है। जो पूँजी लगाते हैं अधिक लाभ उठाते है, मजदूरो को कम मजदूरी मिलती है। इस पक्ष के लोगों का कहना है कि अमीर गरीब, निबल, सबल, मूर्ख और बुद्धिमान सभी अपनी अपनी योग्यता के अनुसार कमाने की स्पर्धा करते है। गांधीवाद दर्शनों का दर्शन है। इसका सिद्धान्त सत्य, अहिंसा और त्याग द्वारा आध्यात्मिक उन्नति करना है। मशीनों से काम लेने से मनुष्य जाति पर घोर अत्याचार हुआ है। यदि चर्खा आदि साधनों से काम लिया जाय तो प्रत्येक मनुष्य को मजदूरी और काम मिल सकता है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि गाँधी जी मशीनों का विरोध करते थे। वे चाहते थे कि सम्पत्ति का विभाजन न्याय से हो। इससे देश की निधनता कम होगी। मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ कम करनी चाहिए तभी उसे सतोष और सुख प्राप्त हो सकता है।

१. **प्रजातन्त्रवाद** (Democracy)—यूरोप मे १९ वीं शताब्दी को प्रजातन्त्रवाद (Democracy) का जमाना कह सकते हैं। इस प्रजातन्त्रवाद (Democracy) की लहर बीसवी शताब्दी के शुरु से ही एशिया के देशों मे भी फैली। भारत और चोन मे प्रजातन्त्रवाद ने विशेष जोर पकड़ा। सारे भारत मे आज प्रजातन्त्रवाद (Democracy) का ही बोलबाला है। यद्यपि ससार के दूसरे देशों मे समाजवाद (Socialism) जोर पकड़ता जा रहा है, तथापि भारत मे प्रजातन्त्रवाद (Democracy) फैल रहा है। जहाँ देखो वहाँ लोग अपने हितों की रक्षा के लिए प्रजातन्त्रीय सस्थाओं (Democratic Institutions) की स्थापना करना चाहते है। अभी भारत मे प्रजान्त्रवाद (Democracy) के लिए बहुत बडा क्षेत्र है।

प्रजातन्त्रवाद (Democracy) का आधार स्वतत्रता (Liberty) और समानता (Equality) पर बना है। मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए समाज मे स्वतन्त्रता (Liberty) और समानता (Equality) का होना अत्यावश्यक है। स्वतत्रता (Liberty) और समानता (Equality) दोनों एक दूसरे के आधार पर खडी है। बिना स्वतन्त्रता के समानता का कोई अस्तित्व नहीं तथा बिना समानता के स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नही। स्वतन्त्रता (Liberty) और समानता (Equality) का वैसा ही घनिष्ट समबन्ध है जैसा कि धुआ और आग का।

प्रजातन्त्रवाद (Democracy) स्वतन्त्रता (Liberty) और समानता (Equality) के आधार पर समाज की उन्नति चाहता है। अमेरिका के प्रसिद्ध नेता इब्राहम लिकन

(Abraham Lincoln) ने कहा है कि प्रजातन्त्रवाद (Democracy) मे जनता का शासन जनता के द्वारा उसके कल्याण के लिये होता है। (Government of the people by the people and for the people) प्रजातन्त्रवाद (Democracy)मे प्रजा के सब वर्गों के हितों की पूरी-पूरी रक्षा होती है, क्योंकि वोट का अधिकार समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से होता है। प्रजातन्त्र राज्य ही एक प्रणाली है जिसमे साधारण लोगो को भी समाज मे उन्नति करने का अवसर मिलता है। प्रजातन्त्रवाद (Democracy) मे नागरिकता का पूर्ण विकास होता है, क्योंकि प्रत्येक नागरिक (Citizen) के हृदय मे राज्य के उत्तरदायित्व का भाव जागृत होता है और अपने देश के शासन मे भी उसका हाथ है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक (Citizen) राज्य के कार्य मे पूर्ण रुचि लेता है।

प्रजातन्त्रवाद (Democracy), देश के नागरिकों मे अपने देश के लिये सच्चा प्रेम उत्पन्न कर उनमे मनुष्यमात्र के कल्याण का एक पवित्र भाव भरता है। प्रत्येक नागरिक समझता है कि देश का शासन अपना है और देश के कल्याण मे ही उसका भी कल्याण है। प्रजातन्त्रवाद (Democracy) के सिवाय और किसी राज्य प्रणाली के शासन मे जनता के सब अगों का सहयोग प्राप्त नहीं होता। प्रजातन्त्रवाद (Democracy) राष्ट्रीयता की भावना से अन्तर्राष्ट्रीय बोध उत्पन्न करता है, और सच्चा राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता मे कोई भेद नहीं डालता। अन्त मे, प्रजातन्त्रवाद (Democracy) समाज के सब सदस्यों को सहयोग का पाठ पढ़ाता है। स्वतन्त्र नागरिकता की रक्षा केवल प्रजातन्त्रवाद (Democracy) मे हो सकती है।

(२) व्यक्तिवाद (Individualism)—समाज मे मुख्यत: दो प्रकार की विचार धाराए है। व्यक्तिवादी (Indi-Vidualism) और समाजवादी (Socialism)। जिस प्रकार प्रकृति मे रात और दिन क्रमश: एक दूसरे के बाद आते हैं उसी प्रकार व्यक्तिवादी (Individualism), समाजवादी (Socialism) विचार धाराये भी एक दूसरी के विरुद्ध क्रमश:आया करती हैं। समाज में कभी व्यक्तिवाद (Individualism) का दौरा है तो कभी समाजवाद (Socialism) का। इन दोनों विचार धाराओं के सिद्धान्त एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न और विपरीत है। जब लोग समाज मे एक तरह की विचार धारा की ज्यादती से त ग आजाते है तो उनका रुख दूसरी विचार धारा की ओर अपने आप हो जाता है। उदाहरणार्थ १९ वी शताब्दी के लोग व्यक्तिवाद (Individualism) सिद्धान्त के पक्षपाती थे, किन्तु व्यक्तिवाद (Individualism) की बुराइयां जब उनको उसी शताब्दी के अन्त तक औद्योगिक-क्रांति (Industrial Revolution) के कारण दृष्टिगोचार हुई तो २० वी शताब्दी के शुरू से लोगों का ध्यान समाजवाद (Socialism) की तरफ जाने लगा।

व्यक्तिवाद (Individualism) का प्रारम्भ एक प्रकार से तभी शुरू हो जाता है जब से मनुष्य ने सोचना आरम्भ किया, किन्तु आधुनिक व्यक्तिवाद (Individualism) का प्रारम्भ १८ वी शताब्दी से हुआ। यूरोप में इसके मुख्य प्रवर्तक बेनथम (Bentham) जेम्समिल (James-Mill) और जोहन स्टुअर्टमिल (Johan Stuart Mill) है। व्यक्तिवादी ('Indivilualisn) सिद्धान्त के अनुयायियों

का कहना है कि समाज में एक व्यक्ति उन्नति को तभी पूर्ण रूप से प्राप्त होता है जब उसको समाज में पूर्ण स्वतन्त्रता हो। उनका कहना है कि राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों को सुख पहुँचाना है। अधिक से अधिक लोगों के सुख की प्राप्ति तभी हो सकती है जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति सुख का पूर्ण रूप से अनुभव कर सके। समाज मे प्रत्येक व्यक्ति अपनी पूर्ण क्षमता को तभी पा सकता है जब उसको मानसिक व शारीरिक शक्ति को बढ़ाने का पूर्ण अवसर मिलता है। मनुष्य जैसे चाहे वैसे तभी कर सकता है जब समाज मे उसको सब प्रकार की सुविधा मिलती है। जीवन-संचालन की शक्ति व उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता भगवान ने प्रत्येक मनुष्य मे उत्पन्न की है, उसे अपनी उन्नति के लिये अपने भरोसे छोड देना चाहिये, उसके काम में समाज और सरकार को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही है। सरकार का कर्तव्य केवल उसके शरीर (Life) उसकी स्वतंत्रता (Liberty) और सम्पत्ति (Property) की रक्षा करना है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसकी उन्नति में बाधा डालता है तो सरकार और समाज को उनकी रक्षा करनी होती है। अपना कल्याण देखने की क्षमता मनुष्य मे है। इस प्रकार व्यक्तियों के कल्याण में ही समाज का भी कल्याण है, इसीलिये सरकार को उनके कार्यक्षेत्र मे हस्तक्षेप करके समाज की उन्नति मे बाधा नही डालनी चाहिए। व्यक्तिवाद (Individualism) का मूल सिद्धान्त "योग्य को ही जीने का अधिकार" (Survival of the fittest) है। व्यक्तिवाद (Individualism) समाज मे प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार और कर्तव्य पर अधिक जोर देता है। यदि समाज मे प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारो और कर्त्तव्यो का

अच्छी तरह पालन करता है, तो सारे समाज का कल्याण अपने आप हो जाता है ।

व्यक्तिवाद (Individualism)के दोष—

१. मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी है, इसी कारण अपनी स्वार्थ सिद्धि के आगे वह किसी का लाभ नहीं सोचता।

२. प्रत्येक व्यक्ति मे अपना लाभ सोचने की क्षमता नही होती और उसे दूसरे की सहायता पर निर्भर होना पड़ता है।

३. लोग अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा मे दूसरों की स्वतन्त्रता के वाधक हो जाते है।

४. व्यक्तिवाद (Individualism) का मूल सिद्धान्त "योग्यों को ही जीने का अधिकार" (Survival of the fittest) बहुत ही सकुंचित है। इससे समाज की कोई उन्नति नही हो सकती।

५ पूंजी वाद (Capitalism) की जितनी बुराइयां है उनकी शुरुआत व्यक्तिवाद (Individualism) से हुई है।

३. समाजवाद (Socialism)—आज जिधर देखो उधर सारे विश्व मे समाजवाद (Socialism) की धारा बह रही है, किन्तु यह कोई नही जानता कि समाजवाद (Socialism) आखिर है क्या ? अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से समाजवाद (Socialism) की परिभाषा करने का प्रयत्न किया है, परन्तु कोई भी इस प्रयत्न मे सफल न हो सका। प्रो० जोड का कहना सही है कि समाजवाद (Socialism) उस हैट (Hat) की तरह है जिसने अपना वास्तविक स्वरूप खो दिया है, क्यों कि प्रत्येक मनुष्य उसको पहिनने का प्रयत्न करता है। प्रो० हैयरनशा ने समाजवाद (Socialism) को

गिरगिट (Chamelleon) के समान बताया है जो कि अपना रंग समय-समय पर बदलता रहता है ।

यह सच है कि समाजवाद (Socialism) की कोई ठीक परिभाषा नहीं हो सकती। केवल इस विषय की व्याख्या ही की जा सकती है । समाजवाद (Socialism) वह विचार धारा है, जिसका मुख्य उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्नति के मार्ग को समान, सरल एव सुलभ बनाना है। इस प्रकार से समाजवादी विचार धारा व्यक्तिवादी (Individualism) विचार धारा के बिल्कुल विपरीत है। समाजवादियों (Socialists) का कहना है कि आधुनिक समाज मे असमानता का मुख्य कारण पूजीवाद (Capitalism) और सामतवाद (Landlordism) है। ये ही दोनों सस्थाए अर्थात् पूजीवाद (Capitlism) और सामतवाद (Land Lordism) व्यक्तिवाद (Individualism) विचार धारा के बल पर खड़ी हैं तथा समाज मे अराजकता का कारण बनी हैं । गरीब और अमीर का भेद भाव इन्हीं सस्थाओं द्वारा पैदा हुआ है, इसलिए समाजवाद (Socialism) का मुख्य उद्देश्य इन दो सस्थाओं का, जो कि समाज मे अराजकता का कारण बनी है, अन्त कर देना है। ईश्वर के घर से कोई गरीब या अमीर पैदा नहीं होता, यह भेद भाव मनुष्य कृत है और व्यक्तिवाद (Individualism) की विचार धारा द्वारा पैदा हुआ है, जिसमें व्यक्तिगत जोखिम (Private Enterprise) और स्पर्धा (Competition) को विशेष महत्व दिया गया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूजीवाद (Capitalism) के पक्षपातियो द्वारा किया गया शोषण एवं आर्थिक महान-विषमता के विरुद्ध जो आवाज उठाई गई है वही समाजवाद (Socilism) है।

समाजवादियों का कहना है कि मनुष्य, मनुष्य का प्रतिद्वंदी नही वरन् साथी एव मित्र है। इसे समाज मे प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को बड़े आराम से तथा बिना दूसरों के अधिकारों को छीने हुए पूर्ण कर सकेगा। प्रो० अमरनारायण अग्रवाल का कहना है कि समाजवाद (Socalism) वह आंदोलन है जो पू जी आर भूमि मे व्यक्तिगत-सम्पत्ति (Private Property) का अत कर और व्यक्तिगत जोखिम (Private Enterprise) और स्पर्धा (Competition) की इतिश्री कर के उन्नति के अवसरों मे समानता (Equality स्थापित करना चाहता है, जिससे शोषण और अधिक भीषण विषमता का लोप होजाय।

प्रो० हैयरनशा ने समाजवाद (Socialsm) के ६ मूल सिद्धान्त दिये है :—

१. समाज को व्यक्तिसे अधिक महत्त्व देना।

२ उन्नति के अवसरों मे समानता पैदा करना।

३. पू जीपतियों से विदा लेना।

४. जमीदारों से भूमि का अधिकार छीन लेना।

५. व्यक्तिगत जोखम (Private enterprise) का अन्त करना।

६. हानिकर स्पर्धा (Competition)को जड़ से उखाड़ फेंकना।

समाजवाद (Socialism) को कार्य-रूप मे परिणत करने के लिए समाजवादियों मे काफी मतभेद है। कुछ समाजवादी तो वर्तमान समाज मे बिना क्रान्तिकारी परिवर्तन किये ही समाजवाद (Socialism) की विश्व मे स्थापना करना

चाहते है। ये शान्ति प्रिय दल के अनुयायी हैं, तथा समाजवाद की स्थापना शान्ति-पूर्वक करना चाहते है। इन को हम (Evolutionary socialists) कह सकते है। इनके विरुद्ध वे लोग है जो समाजवाद की स्थापना क्रान्ति द्वारा करना चाहते हैं तथा आवश्यकतानुसार शक्ति का प्रयोग भी करने को तैयार हैं। इन को हम क्रान्ति कारी समाजवादी (Revolutionary Socialists)कह सकते है। इस प्रकार समाजवाद (Socialism के दो भिन्न २ दल हो गये हैं।

समाजवाद (Socialism) के भिन्न भिन्न रूप है। इनमे उदार समाजवादी (State Socilism) और गिल्ड समाजवाद (Guild socialism) तो अहिसात्मक रूप से समाजवाद (Socialism) की स्थापना करना चाहते है तथा साम्यवाद (Communism) अराजकता वाद (Anarchism , और सैंडिकेलिज्म (Sydicalism) क्रान्तिकारी रूप से समाजवाद (Socialism) की स्थापना करना चाहते है।

आधुनिक ससार मे इगलैण्ड, अमेरिका, भारत और फ्रास, ये देश समाजवाद (Socialism) की स्थापना शान्ति द्वारा चाहते है, इसके विपरीत रूस, जर्मनी, स्पेन, इटली तथा अन्य देश रूस की अध्यक्षता मे सारे विश्व मे क्रान्ति द्वारा साम्यवाद (Communism) की स्थापना करना चाहते है, यही आज ससार मे समाजवाद (Socialism) की लहर है जो सारे विश्व को अपने प्रवाह मे डालना चहती है।

४. पूँजीवाद (Capitalism) प्रकृति ने सब मनुष्यों को समान पैदा किया है, किन्तु जब हम मनुष्य समाज की ओर दृष्टि डालते है तो हमे इस समाज मे इतनी असमानता

दिखाई देती है कि अन्यत्र ऐसी असमानता, किसी भी प्राकृतिक रचना मे दृष्टिगोचर नही होती। एक तरफ हमे ऐसे व्यक्ति दिखाई देते हैं जिनके पास पहिनने को कपड़े और खाने को अन्न तक नही है। दूसरी तरफ ऐसे लोग देखने को मिलते हैं जिनके बहुत से नौकर चाकर तथा अमूल्य वस्तुओं की बहुतायत है और खाने पहिनने की तो बात ही क्या। एक तरह से वे धन कुवेर वने बैठे है। मनुष्य समाज मे ऐसी श्रेणी के लोग भी पाए जाते है, जिनके बच्चों का पालन पोषण पशु, पक्षियों के बच्चे से भी बदतर तरीके से होता है और इसके विरुद्ध ऐसे व्यक्ति भी है जिनके बच्चों की, आवश्यकता से अधिक और ठाट बाट के साथ, देख भाल की जाती है।

आखिर इस विषमता का क्या कारण हो सकता है। प्राचीन काल और माध्यमिक काल में भी गरीब और अमीर हुआ करते थे, परन्तु उनके जीवन और रहनसहन मे इतना भारी अतर नहीं था। इसका उत्तर हमको आज कल की पूंजी द्वारा उत्पादन प्रणाली (Capitalistic System of Production) मे पाते है। इस प्रणाली का बीजारोपण १८ वीं और १९ वीं शताब्दी की औद्योगिक-क्रांति (Industrial Revolution) में हुआ है। इस समय व्यक्तिवादी (Individualism) विचार धारा अपनी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी। इसी व्यक्तिवाद (Individualism) के अनुसार मनुष्य का अपने जीवन, अपने कार्य और अपनी सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार माना गया है। इसके साथ ही साथ समाज मे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति करने के लिये स्पर्धा (Competition) का पूर्ण अधिकार है। इसका अन्त यह हुआ कि लोगों ने अपनी इस व्यक्तिवाद की स्वतन्त्रता तथा स्पर्धा

का अनुचित प्रयोग किया तथा गरीबों का शोषण करने का एक नया तरीका, स्पर्धा (Competition) और लाभ (Pro fit) के द्वारा निकाल लिया। पूंजीपतियों (Capitalists) की पूंजी (Capital) से चलाये गए कारखानो आदि मे गरीब लोग सुबह से शाम तक काम करके अपनी निश्चित मजदूरी लेकर चले जाते हैं, किन्तु यह मजदूरी जो उनको दी जाती है वह उनके वास्तविक परिश्रम की अपेक्षा बहुत कम होती है जिसका लाभ पूंजीपति उठाते है और इसी तरह से शोषण करके पूंजीपति (Capitalists) कुबेर बने हुए है।

पूंजीवाद (Capitalism) की बुनियाद, व्यक्तिवाद (Individualism) के सिद्धान्तों पर बनी है, क्योंकि व्यक्तिवाद (Individualism) के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को स्पर्धा (Competiton) तथा अपनी मजदूरी (Labour) को बेचने का पूरा-पूरा अधिकार है। किन्तु, यदि निष्पक्ष भाव से देखा जाय तो यह स्वतन्त्र-स्पर्धा (Free competition) का सिद्धान्त मनुष्य की समानता के विरुद्ध जाता है। गरीब और अमीर मे, निर्बल और सबल मे, मूर्ख और बुद्धिमान मे कोई न्याय-पूर्ण स्पर्धा (Competition) नहीं हो सकती।

५. **गांधीवाद** (Gandism)—गांधीवाद क्या है ? गांधीवाद कोई एक विशेष दर्शन नहीं वरन् सब दर्शनों का दर्शन है। यह सत्य और अहिंसा का एक मेल है। गांधी जी ने जिस मार्ग को अपनाया वह कई शास्त्रों का सारभूत वास्तविक तत्व है। जीवन का यही निष्कर्ष है। उनके इसी तत्वज्ञान को गांधीवाद कहते है।

गांधीवाद का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति करना है। इस उन्नति के मुख्य ४ साधन है ; सत्य, अहिंसा, कर्तव्य-

पालन और परमात्मा मे अटल विश्वास। महात्मा जी ने स्वयं सत्य बोला और सत्य बोलना सिखाया, अहिंसा का मत प्रचार किया और परमात्मा मे दृढ़ विश्वास रखा। यही उनकी आध्यात्मिक उन्नति का कारण है। गाधीवाद इस बात मे पूर्ण विश्वास रखता है कि ससार के सारे कार्य तभी पूर्ण हो सकते है जब समाज ईश्वर मे विश्वास रखे और मन, कर्म, वचन से सत्य बोले, किसी के प्रति हिंसात्मक भाव न रखे।

गांधी जी भारत के प्राण और स्वाधीनता के प्रेमी थे। गांधीवाद के अनुसार केवल बाहरी स्वतन्त्रता नही अपितु आन्तरिक स्वतन्त्रता भी होनी चाहिए। इस स्वतत्रता को प्राप्त करने के लिए अहिंसा अमोघ शस्त्र है। अहिंसा द्वारा ही मनुष्य-जाति को पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त हो सकती है। इस मत के अनुसार स्वतन्त्रता का व्यापक अर्थ है अर्थात् स्वतन्त्रता से मानसिक शारीरिक बौद्धिक और राजनैतिक सभी प्रकार की स्वतन्त्रता वांछनीय है। मानसिक और शारीरिक उन्नति पर ही किसी जाति का भविष्य निर्भर है। जिस जाति या देश मे आचरण की कमी है वह कभी राजनैतिक उन्नति नही कर सकता। अतः सबसे पहिले उदार चरित्र, उदार विचार और आत्मनिर्भरता होनी चाहिए। यह सब तभी संभव है जब "सादा जीवन और "उच्चविचार" का अटल सिद्धान्त माननीय हो। यहाँ पर सादगी के यह अर्थ नही कि मनुष्य को कोट पैन्ट नहीं पहिनना चाहिए, केवल धोती कुर्ता ही पहिनना चाहिए परन्तु इसके वास्तविक अर्थ यह हैं कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताएँ कम करनी चाहिए। जितनी ही आवश्यकताएँ बढ़ती जाती है उतना ही जीवन जटिल और व्यस्त बनता जाता है। जब आवश्कताएँ कम होंगी तो बौद्धिक विकास

के लिए अधिक समय मिलेगा। और भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति होगी।

गांधीजी का अटल विश्वास था कि किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता तब तक असभव है जब तक हमारे ऊपर विदेशी शासन है। जब यह शासन हट जावेगा तभी हमारी सब प्रकार की सामाजिक, एवम् राष्ट्रीय उन्नति सभव होगी। गाँधीवाद किसी एक राष्ट्र के लिए नहीं वरन् समस्त विश्व के लिए शाश्वत है। इसका 'वसुधैव कुटुम्बकम' का सिद्धान्त है। उनका विश्वास था कि प्रेम कुटुम्ब से प्रारम्भ होकर परमात्मा पर समाप्त होता है। पारिवारिक प्रेम ही बढते बढते समाज प्रेम, राष्ट्रप्रेम और विश्व प्रेम मे परिणत हो जाता है और अन्त मे ईश्वर मे लीन हो जाता है।

गाधीवाद जाति पाति का पक्षपाती नहीं है। यह अछूतों को हिन्दूधर्म का एक अग मानता है, उनकी उन्नति के लिए सदा दत्तचित्त रहता है, परन्तु फिर भी प्राचीन सस्कृति को अपनाते हुए वह जाति पाति के बन्धन का मूलोच्छेदन नहीं चाहता, उसमे सुधार करके उसकी उन्नति करना इसका महान उद्देश्य है।

गाँधीवाद यह भी नही चाहता कि दूसरे के धन को छीनकर कोई बडा हो जाय या धनवान बन जाय। इसका सिद्धान्त केवल इतना ही है कि अपनी आवश्यकताएँ पूरी हो जायँ। सभी मनुष्य सुखी और सतुष्ट हो पर यह सभव तभी हो सकता है जब देश धनी हो। दश को धनी बनाने का यही साधन नहीं है कि पूंजीपतियों की पूजी छीन ली जाय और गरीबो को बॉट दी जाय। सब स श्रेष्ट साधन यह है कि इतने उद्योग धन्धे

बढ़ाए जायँ कि प्रत्येक मनुष्य को काम मिल सके और सबके साथ समानता का व्यवहार हो और प्रत्येक व्यक्ति के साथ न्याय हो।

गाँधीवाद का उद्देश्य शक्ति की वृद्धि करना है। बहुत से घरेलू धन्धे चलाए जायँ। गृह कला को प्रोत्साहन दिया जाय और मशीनों के उपयोग मे मनुष्य के साथ न्याय हो। श्रमिकों को उचित मजदूरी मिले जिससे उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। उन्हे विकास का समय दिया जाय और उनकी उन्नति की ओर ध्यान रखा जाय। गाधी जी का आदर्श था स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना सिखाना जिससे देश मे कला की उन्नति हो। उन्होंने ग्रामोद्धार के महत्त्व को समझा और ग्रामों के सगठन पर विशेष ज़ोर दिया। वास्तव मे भारत ऐसे कृषक देश मे ग्रामों का विशेष महत्व है। ग्रामों के सुधार से ही भारत का समाज सुधर सकता है। ग्रामों मे पचायतों का होना, उनकी एकता, उनका सगठन गाधीवाद का प्राण है। गांधीवाद जीवन के आर्थिक रूप को सरल बनाना चाहता है।

गाधीवाद मे आत्मबल एवम् अहिसा का अधिक महत्व है। उसका सिद्धान्त है कि मनुष्य को अपने शत्रु पर चाहे वह बलवान हो अथवा निर्बल कभी हिसात्मक प्रतिकार नही करना चाहिये। असहयोग आन्दोलन मे भी गांधी जी ने अहिंसा से ही कार्य किया और अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने गाधीवाद का दृष्टिकोण बड़े सुचारु रूप से रखा है। आप लिखते है कि "सामाजिक समस्या का समाधान शान्तिमय समझौते मे है, संघर्ष में नही, पारम्परिक मेल मे है, विनाश मे नहीं, परिवर्तन मे है, क्रान्ति मे नहीं, आत्म-

अभिव्यक्ति मे है इतर अभिव्यक्ति मे नहीं, एक शब्द अहिंसा मे है हिसा मे नही ।"

साम्यवादी कहते है कि आवश्यकता पड़ने पर बल का प्रयोग करना चाहिये। वैसे तो अहिसा का ही प्रयोग करना चाहिये, परन्तु जब अहिसा से काम न चले तो हिसा से भी काम लेना उचित है। यही दोनों मे अन्तर है। गाधीवाद अहिसा का पूर्ण पक्षपाती है, लेशमात्र भी हिसा नही चाहता। उसके सिद्धान्त द्वारा त्याग और प्रेम मे अधिक बल है। उसका निश्चय है त्याग करो, सहिष्णुता रक्खो, ईश्वर पर विश्वास और अहिसात्मक बने रहो, समय पर सब कार्य पूर्ण होगा। गांधीवाद व्यक्तिवाद मे विश्वास रखता है, परमात्मा पर आस्था रखता है। उसका विश्वास है कि प्रार्थना से मनुष्य को शक्ति मिलती है। महात्मा गांधी प्रार्थना सभा में इसी बात पर अधिक प्रकाश डालते थे कि प्रार्थना द्वारा मनुष्य में आत्म-निर्भरता आती है। उसे सुख और सतोष मिलता है।

गांधीवाद सर्वोदय मे विश्वास रखता है, मानव समाज का उदय चाहता है। वह एक ऐसे आदर्श की ओर लक्ष्य रखता है जहाँ गरीब, अमीर, हिन्दू, यवन, स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण और हरिजन सभी के अधिकार सुरक्षित रहे। यद्यपि महात्मागांधी इस ससार मे नही हैं परन्तु उनकी शिक्षा और उनका उद्देश्य गांधीवाद के रूप मे सदा अमर रहेगा।
